हिन्द स्वराज

मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्द स्वराज

गांधीजी

अनुवादक

अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी

"यह किताब द्वेषधर्म की जगह प्रेमधर्म सिखाती है;
हिंसा की जगह आत्म-बलिदान को रखती है;
पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है।"

पहली आवृत्ति, प्रति १०,०००, १९४९

ISBN 978-81-7229-125-9

मुद्रक और प्रकाशक
विवेक जितेन्द्रभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय
अहमदाबाद - ३८० ०१४
फोन: +91-79-28540635 | 27542634
E-mail : jitnavjivan10@gmail.com | Website : www.navajivantrust.org

अनुक्रमणिका

[इस संस्करण में जोडी गई सामग्री को (*) चिह्न से दर्शाया गया है।]

प्रकाशन तारीख *

संवर्धित संस्करण के प्रकाशन निमित्त

निवेदन

गांधीजी की प्रस्तावनाएँ

हिंद स्वराज की प्रस्तावना (१९१०)

हिंद स्वराज (१९१४)*

प्रस्तावना (१९१९)*

हिंद स्वराज्य के बारे में (१९२१)

हिंद स्वराज

प्रकरण के अनुक्रम

प्रस्तावना

प्रकरण १ से २०

परिशिष्ट: कुछ प्रमाणभूत ग्रंथ

परिशिष्ट : प्रतिष्ठित व्यक्तियों की साक्षी*

अन्य प्रस्तावनाएँ

टिप्पण (१९१९)*	**च. राजगोपालाचार**
उपोद्घात (१९३८)	**महादेव देसाई**
संदेश: *आर्यन पाथ* को (१९३९)	**मो. क. गांधी**
नई आवृत्ति की प्रस्तावना (१९३९)	**महादेव देसाई**
दो शब्द (१९५९)	**काका कालेलकर**

प्रकाशन तारीख

१९०९ **१० जुलाई-१३ नवम्बर** : ट्रान्सवाल डेप्युटेशन के लिए गांधीजी का लंदन-निवास.

- **१३-२२ नवम्बर**: इंग्लन्ड से दक्षिण अफ्रिका लौटते जहाज़ *किलडोनन कॅसल* पर गांधीजी ने गुजराती पुस्तक लिखी.

- **११ दिसम्बर**: पहले बारह प्रकरण *इन्डियन ओपिनियन* में प्रकट हुए.

- **१८ दिसम्बर**: बाकी के प्रकरण *इन्डियन ओपिनियन* में प्रकट हुए.

१९१० **जनवरी** : पहला गुजराती संस्करण. फिनीक्स (द. अफ्रिका) : इन्टरनेशनल प्रिन्टिंग प्रेस.

- **२४ मार्च**: मुंबई सरकार ने प्रतिबंध लगाया.

- **मार्च**: पहला अंग्रेज़ी संस्करण (अनु. गांधीजी). फिनीक्स (द. अफ्रिका) : इन्टरनेशनल प्रिन्टिंग प्रेस. गांधीजी की नई प्रस्तावना के साथ.

१९१४ **मे**: दुसरा गुजराती संस्करण. फिनीक्स (द. अफ्रिका) : इन्टरनेशनल प्रिन्टिंग प्रेस. गांधीजी की नई प्रस्तावना के साथ.

१९१९ हिंद में पहला अंग्रेज़ी संस्करण. मद्रास: गणेश एन्ड कंपनी. गांधीजी की नई प्रस्तावना और च. राजगोपालाचार की टिप्पण के साथ.

१९२१ संस्करण ४. मद्रास: गणेश एन्ड कंपनी. *यंग इन्डिया* में प्रसिद्ध गांधीजी के 'हिंद स्वराज ओर इन्डियन होमरूल' लेख के साथ.

१९२२ हिंद में पहला गुजराती संस्करण. नवजीवन.

१९२३ **सप्टेम्बर**: गांधीजी की मूल पांडुलिपि पर से हस्ताक्षर-संस्करण. नवजीवन.

१९२४ *सरमन ओन ध सी* नामक अमेरिकन संस्करण (संपा. हरिदास टी. मझूमदार). शिकागो : युनिवर्सल पब्लिशिंग कंपनी.

१९३८ नवजीवन का पहला अंग्रेज़ी संस्करण. महादेव देसाई की प्रस्तावना के साथ.

- **सप्टेम्बर**: *आर्यन पाथ* सामयिक (मुंबई) के 'हिंद स्वराज विशेषांक' का प्रकाशन.

१९३९ संवर्धित अंग्रेज़ी संस्करण. नवजीवन. गांधीजी ने *आर्यन पाथ* को दिए संदेश और महादेवभाई ने *आर्यन पाथ* के 'हिंद स्वराज विशेषांक' के बारे में *हरिजन* में लिखे लेख के साथ.

१९५१ हिंदी संस्करण (अनु. अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी) . नवजीवन. काका कालेलकर की प्रस्तावना के साथ.

२००९ हिंद स्वराज शताब्दी वर्ष के निमित्त पर हस्ताक्षर एवं गुजराती, हिंदी और अंग्रेज़ी पाठ के साथ विशिष्ट संस्करण. नवजीवन.

संवर्धित संस्करण के प्रकाशन निमित्त

दक्षिण अफ्रिका में सर्व प्रथम १९१० में, *हिंद स्वराज* पुस्तक स्वरूप में प्रकाशित हुई । इन पन्नों पर अन्यत्र दी गई प्रकाशन-तवारीख से स्पष्ट होता है की उसके बाद की इस पुस्तक की प्रकाशन-यात्रा दिलचस्प रही | *हिंद स्वराज* के गुजराती और अंग्रेज़ी में विविध संस्करण निकलते रहे । इन संस्करणों में गांधीजी की प्रस्तावनाएं अलग अलग यथेच्छ ढंग में दी जाती रही ।

युवा मोहनदास गांधी ने किलडोनन कॅसल जहाज़ के डॅक पर बैठ कर, जहाज़-कंपनी ने दिए हुए के काग़ज़ पर कलम चलाई, बिना रुके, बिना कोई सुधार किये यह प्रकरण लिखे। वह हस्तप्रत सुरक्षित रही थी और उसके आधार पर नवजीवन ने एक विशिष्ट हस्ताक्षर संस्करण १९२३ में प्रकाशित किया था।

२००९ में *हिंद स्वराज* का शताब्दी संस्करण नवजीवन ने अनूठे ढंग में प्रकट किया था: बरसों से अप्राप्य हस्ताक्षर संस्करण के अलावा नवजीवन-प्रकाशित मूल गुजराती पाठ, गांधीजी ने किया था वह अंग्रेज़ी अनुवाद (१९१०), तथा अमृतलाल नाणावटी-अनुवादित हिंदी पाठ: यह सब सामग्री कलात्मक रीति से एकत्रित की गई थी। हाथ-काग़ज़ पर छपे, रुचिपूर्वक निर्मित यह विशिष्ट संस्करण का समुचित स्वागत हुआ था, और उपहार के लिए भी उसका उपयोग होता रहा।

यह संस्करण समाप्त होने के पश्चात उसे दुबारा प्रकट करते वक्त शताब्दी आवृत्ति की डिज़ाइन लगभग यथातथ रख के, कुछ संपादकीय सुधार एवं नई सामग्री के साथ संपादकीय व्यवस्था तार्किक बनाई है; गांधीजी की सभी प्रस्तावनाएं उनके प्रतिपादन का प्रवेशद्वार है। हस्ताक्षर को छोड़ कर सभी प्रस्तावनाएं पुस्तक के अंत में थीं, उन्हें पुस्तक के आरंभ में एकत्रित करना उचित समझा है। विविध संस्करणों में समाविष्ट अन्य महानुभाव लिखित प्रस्तावनाएं पुस्तक के अंत में दी गई हैं । आदि संस्करण की कुछ प्रस्तावनाएं जो छूट गई थी, तथा कुछ अग्रंथस्थ सामग्री चुन-खोज़कर यहाँ एकत्र की गई हैं । (उनका यथोचित निर्देश अनुक्रमणिका में किया गया है ।) यह संपादकीय परिश्रम के

बाद *हिंद स्वराज* का यह विशिष्ट संस्करण अखंड और अधिकृत बनता है | इसे प्रस्तुत करने में हमें ख़ुशी है।

किफायती दर से प्रकट होने वाले गुजराती, हिंदी व अंग्रेज़ी संस्करण में भी वह सभी नवीन सामग्री का समावेश कर के संवर्धित पुस्तक सहर्ष प्रस्तुत है।

निवेदन

गांधीजी के विचार आसान हिंदुस्तानी में जनता के सामने रखना 'गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा, दिल्ली' के अनेक कामों में से एक खास काम है। गाँधीजी अकसर आसान भाषा में हीं लिखते थे। उन्होंने जो गुजराती भाषा में लिखा है, वह बिलकुल सरल है।

फिर भी मुमकिन है कि गुजराती, हिंदी और दूसरी भाषाओं में जो शब्द आसानी से समझे जाते हैं, वे सिर्फ उर्दू जाननेवालों के लिए नये हों। इसलिए अनुवाद में एसे शब्दों के साथ साथ आसान उर्दू शब्द भी देना ठीक समझा है। उम्मीद है कि इस तरह उर्दू जबान हिंदी के नज़दीक आयेगी और उर्दू जाननेवाली जनता हिंदुस्तान की दूसरी भाषाओं का साहित्य भी आसानी से समझ सकेगी।

गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा ने नवजीवन के साथ तय किया है कि गांधीजी की जो किताबें वह तैयार करेगी, उनकी नागरी आवृत्ति छापने का भार नवजीवन का होगा।

काका कालेलकर

हिंद स्वराज की प्रस्तावना

पहला अंग्रेज़ी संस्करण, दक्षिण अफ्रिका: इन्टरनेशनल प्रिन्टिंग प्रेस, १९१०

जोहानिसबर्ग,

मार्च २०, १९१०

हिंद स्वराज्य का अंग्रेज़ी अनुवाद जनता के सामने पेश करते हुए मुझे कुछ संकोच हो रहा है। एक यूरोपीय मित्र के[१] साथ इसकी विषय-वस्तु पर मेरी चर्चा हुई थी। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि इसका अंग्रेज़ी अनुवाद किया जाये; इसलिए अपने फुरसत के समय में, मैं जल्दी-जल्दी बोलता गया और वे लिखते गये। यह कोई शब्दश: अनुवाद नहीं है। परन्तु इसमें मूल के भाव पूरे-पूरे आ गये हैं। कुछ अंग्रेज़ मित्रों ने इसे पढ लिया है और जब रायें माँगी जा रही थी कि पुस्तक को प्रकाशित करना ठीक है या नहीं, तभी समाचार मिला कि मूल पुस्तक भारत में जब्त कर ली गई है। इस समाचार के कारण तुरन्त निर्णय लेना पडा कि इसका अनुवाद प्रकाशित करने में एक क्षण की भी देर नहीं की जानी चाहिए। मेरे इंटरनेशनल प्रिन्टिंग प्रेस के साथी कार्यकर्ताओं की भी यही राय रही और उन्होंने अतिरिक्त समय काम करके-केवल इस काम के प्रति प्रेम के कारण हीं-मुझे, आशा से कम समय में, इस अनुवाद को जनता के सामने रखने में सहायता दी। पुस्तक जनता को लागत मूल्य पर हीं दी जा रही है। बहुत-से मित्रों ने मुझे इसकी प्रतियाँ स्वयं अपने लिए और लोगों में बाँटने के लिए खरीदने का वचन दिया है। यदि उनसे यह आर्थिक सहायता न मिली होती तो शायद यह पुस्तक प्रकाशित हीं न हो पाती।

मूल में जो अनेक खामियां हैं उनका मुझे खूब ज्ञान है। अंग्रेज़ी अनुवाद में भी इनका और साथ हीं दूसरी बहुत-सी भूलों का जाना स्वाभाविक है। क्योंकि मैं मूल के भावों को सही-रूप में अनूवादित नहीं कर सका हूँ। जिन मित्रों ने अंग्रेज़ी अनुवाद पढ़ा है उनमें से कुछ ने पुस्तक के विषय का निरूपण संवाद-रूप में करने पर आपत्ति की है। मेरे पास इस आपत्ति का कोई जवाब नहीं है। सिवा इसके कि इस रूप में लिखना गुजराती में सरल होता है और उसमें कठिन विषयों को समझाने का यही सबसे अच्छा तरीका माना गया है। अगर मैंने मूलतः अंग्रेज़ी पढ़नेवालों को ध्यान में रखकर लिखा होता तो विषय का

प्रतिपादन बिलकुल दूसरे प्रकार से किया गया होता। इसके अलावा जिस रूप में संवाद दिया गया है उसी रूप में कितने हीं मित्रों से, जो ज्यादातर *इंडियन ओपिनियन* के पाठक हैं, मेरी प्रत्यक्ष बातचीत भी हुई है।

हिंद स्वराज्य में प्रकट किये गये विचार मेरे विचार हैं और मैनें भारतीय दर्शनशास्त्र के आचार्यों के साथ-साथ टॉल्स्टॉय, रस्किन, थोरो, इमर्सन और अन्य लेखकों का भी नम्रतापूर्वक अनुसरण करने का यत्न किया है। वर्षों से टॉल्स्टॉय मेरे गुरूओं में से एक रहें है। जो लोग आगे के अध्यायों में प्रस्तुत विचारों का अनुमोदन ढूँढना चाहे उन्हें स्वयं इन विचारकों के शब्दों में अनुमोदन इनका मिल जायेगा। पाठकों की सहूलियत के लिए कुछ पुस्तकों के नाम परिशिष्ट में दे दिये गये हैं।

मुझे पता नहीं कि *हिंद स्वराज्य* पुस्तक भारत में जब्त क्यों कर ली गई? मेरी दृष्टि में तो यह जब्ती ब्रिटिश सरकार जिस सभ्यता का प्रतिनिधित्व करती है उसके निंद्य होने का अतिरिक्त प्रमाण है। इस पुस्तक में हिंसा का तनिक-सा भी समर्थन कहीं किसी रूप में नहीं है। हाँ, उसमें ब्रिटिश सरकार के तौर-तरीकों की जरूर कडी निन्दा की गई है। अगर मैं यह न करता तो मैं सत्य का, भारत का और जिस साम्राज्य के प्रति वफादार हूँ उसका द्रोही बनता। वफादारी की मेरी कल्पना में वर्तमान शासन अथवा सरकार को, उसकी न्यायशीलता या उसके अन्याय की ओर से आँखें मूँदकर चुपचाप स्वीकार कर लेना नहीं आता। न्याय और नीति के नाम पर वह आज जो कर रही है उसे मैं नहीं मानता। बल्कि मेरी वफादारी की यह कल्पना इस आशा और विश्वास पर आधारित है कि नीति के जिस मानदण्ड को सरकार आज अस्पष्ट और पाखंडपूर्ण ढंग पर सिद्धान्त-रूप में स्वीकार करती है उसे वह भविष्य में कभी व्यवहार में भी स्वीकार करेगी। परन्तु मुझे साफ तौर से मान लेना चाहिए कि मुझे ब्रिटिश साम्राज्य के स्थायित्व से इतना सरोकार नहीं हैं जितना भारत की प्राचीन सभ्यता के स्थायित्व से है; क्योंकि मेरी मान्यता है कि वह संसार की सर्वोत्तम सभ्यता है। भारत में अंग्रेज़ी राज्य आज आधुनिक और प्राचीन सभ्यता के बीच के संघर्ष का प्रतीक है। इनमें से एक शैतान का राज्य है और दूसरा ईश्वर का। एक युद्ध का देवता है और दूसरा प्रेम का। मेरे देशवासी आधुनिक सभ्यता की बुराइयों के लिए अंग्रेज़

जाति को दोषी ठहराते है। इसलिए वे समझते हैं कि अंग्रेज लोग बुरे हैं, न कि वह सभ्यता जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए वे यह मानते हैं कि अंग्रेज़ों को देश से निकालने के लिए उन्हें आधुनिक सभ्यता और हिंसा के आधुनिक तरीके अपनाने चाहिए। *हिंद स्वराज्य* यह दिखाने के लिए लिखा गया है कि यह आत्मघातकारी नीति पर चलना होगा। उसका उद्देश्य यह दिखाना भी है कि अगर वे अपनी गौरवमय सभ्यता का हीं पुनः अनुसरण करेंगे तो अंग्रेज़ या तो उसको स्वीकार कर लेंगे और भारतीय बन जायेंगे या भारत से उनका अधिकार हीं उठ जायेगा।

पहले इस अनुवाद को *इंडियन ओपिनियन* में छापने का विचार था। परन्तु मूल पुस्तक के जब्त हो जाने के कारण एसा करना उचित नहीं जान पड़ा। *इंडियन ओपिनियन* ट्रान्सवाल के सत्याग्रह-संग्राम का प्रतिनिधित्व करता है। इसके अलावा उसमें आम तौर पर दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों की शिकायतें भी प्रकाशित की जाती हैं। इसीलिए यह वांछनीय समझा गया कि इस तरह के प्रातिनिधिक पत्र में मेरे व्यक्तिगत विचार प्रकाशित न किये जायें। ये विचार खतरनाक या राजद्रोहात्मक भी माने जा सकते हैं। स्वभावत: मेरी चिन्ता तो यह है कि मेरे किसी एसे कार्य से जिस का उससे कोई संबंध न हो, इस महान संघर्ष को हानि न पहुँचे। अगर मुझे यह मालूम न हो गया होता कि दक्षिण अफ्रिका में भी हिंसात्मक साधनों के लोकप्रिय होने का खतरा है और मेरे सैकडों देशभाइयों ने ओर कई अंग्रेज़ मित्रों ने भी मुझसे यह आग्रह न किया होता कि मैं भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के संबंध में अपने विचार प्रकट करूँ तो मैं संघर्ष की खातिर अपने विचारों को लेखबद्ध न करता। लेकिन आज मेरा जो स्थान है उसे देखते हुए, उपर्युक्त परिस्थितियों में इस पुस्तक के प्रकाशन को टालना मेरे लिए कायरता होती।

इंडियन ओपिनियन, २-४-१९१० **मो. क. गांधी**

[अंग्रेज़ी से]

---

१. हरमन कैलनबैक, देखिए 'उपोद्घात', पृ. १२३

हिंद स्वराज

दूसरा गुजराती संस्करण, दक्षिण अफ्रिका: इंटरनेशनल प्रिन्टिंग प्रेस, १९१४

हिंद स्वराज्य मैंने १९०९ में इंग्लैण्ड से [दक्षिण अफ्रिका] वापिस आते हुए जहाज़ पर लिखी थी। किताब बम्बई प्रेसीडेंसी में जब्त कर ली गई थी इसलिए सन् १९१० में मैंने उसका [अंग्रेज़ी] अनुवाद प्रकाशित किया। पुस्तक में व्यक्त विचारों को प्रकाशित हुए इस प्रकार पाँच वर्ष हो चुके हैं। इस बीच, उनके संबंध में अनेक व्यक्तियों ने मेरे साथ चर्चा की है। कई अंग्रेज़ों और भारतीयों ने पत्र-व्यवहार भी किया है। बहुतों ने उससे अपना मतभेद प्रकट किया। किन्तु अंत में हुआ यही है कि पुस्तक में मैंने जो विचार व्यक्त किए थे, वे और ज्यादा मजबूत हो गए हैं। यदि समय की सुविधा हो तो मैं उन विचारों को युक्तियाँ और उदाहरण देकर और विस्तार दे सक़ता हूँ; लेकिन उनमें फेरफार करने का मुझे कोई कारण नहीं दिखता।

हिंद स्वराज्य की दूसरी आवृत्ति की माँग कई लोगों की ओर से आई है, अत: फीनिक्स के निवासियों और विद्यार्थियों ने अपने उत्साह और प्रेम के कारण जब-तब समय निकालकर यह दूसरा संस्करण छापा है।

यहाँ मैं सिर्फ एक बात का उल्लेख करना चाहूँगा। मेरे कान में यह बात आई है कि यद्यपि *हिंद स्वराज्य* लगातार यही सीख देता है कि हमें किसी भी स्थिति में, किसी भी समय शरीरबल का आश्रय नहीं लेना चाहिए और अपना साध्य सदा आत्मबल से हीं प्राप्त करना चाहिए; लेकिन सीख जो भी रही हो, परिणाम की दृष्टि से उससे अंग्रेज़ों के प्रति तिरस्कार का भाव और उनके साथ हथियारों से लड़कर या और किसी तरह मारकर उन्हें भारत से निकाल देने का विचार पैदा हुआ है। यह सुनकर मुझे दुःख हुआ। *हिंद स्वराज्य* लिखने में यह हेतु बिलकुल नहीं था। और मुझे कहना पड़ेगा कि उसमें से जिन लोगों ने यह निष्कर्ष निकाला है वे उसे बिलकुल नहीं समझे हैं। मैं स्वयं अंग्रेज़ों के या अन्य किसी भी राष्ट्र की जनता या व्यक्तियों के प्रति तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखता।

जैसे किसी महासागर की जल-राशि की सारी बूँदें एक हीं अंग हैं उसी प्रकार सब प्राणी एक हीं हैं। मेरा विश्वास है कि प्राणिसागर में रहनेवाले हम सब प्राणी एक हीं हैं और

एक-दूसरे से हमारे संबंध अत्यंत प्रगाढ़ है। जो बिंदु समुद्र से अलग हो जाता है वह सूख जाता है, उसी प्रकार जो जीव अपने को दूसरों से भिन्न मानता है वह नष्ट हो जाता है। मैं तो यूरोप की आधुनिक सभ्यता का शत्रु हूँ और *हिंद स्वराज्य* में मैंने अपने इसी विचार को निरूपित किया है। और यह बताया है कि भारत की दुर्दशा के लिए अंग्रेज़ नहीं बल्कि हम लोग हीं दोषी हैं, जिन्हों ने आधुनिक सभ्यता स्वीकार कर ली है। इस सभ्यता को छोड़कर हम सच्ची धर्म-नीति से युक्त अपनी प्राचीन सभ्यता पुनः अपना लें तो भारत आज हीं मुक्त हो सक़ता है। *हिंद स्वराज्य* को समझने की कुंजी इस बात में है कि हमें दुनियावी प्रवृत्ति से निवृत्त होकर धार्मिक जीवन ग्रहण करना चाहिए। एसे जीवन में काले या गोरे किसी भी मनुष्य के प्रति हिंसक व्यवहार के लिए कोई स्थान नहीं हो सक़ता।

इंडियन ओपिनियन, २९-४-१९१४ **मो. क. गांधी**

[गुजराती से]

प्रस्तावना

हिंद में पहला अंग्रेजी संस्करण मद्रासः गणेश एण्ड कंपनी, १९१९

बम्बई

मई २८, १९१९

मैं इस पुस्तिका को एकाधिक बार पढ़ गया हूँ। इस समय इसका ज्यों का-त्यों छाप दिया जाना हीं ठीक है। परंतु यदि मैं इसमें संशोधन करना हीं चाहूँ तो उसमें एक हीं शब्द बदलना चाहूँगा क्योंकि मैं इस बात का वचन अपने एक अंग्रेज़ मित्र को दे चुका हूँ। उन्हों ने संसद के संबंध में मेरे द्वारा प्रयुक्त "वेश्या" शब्द पर आपत्ति की थी। यह शब्द उन्हें सुरुचिपूर्ण नहीं जान पड़ा। पाठकों को मैं फिर याद दिला दूँ कि प्रस्तुत पुस्तिका मूल गुजराती पुस्तिका का रूपांतर है।

जो विचार इन पृष्ठों में व्यक्त किए गए हैं उनको अनेक वर्षो तक आचरण में उतारने का प्रयत्न करते रहकर जान पड़ता है कि उसमें दिखाया गया मार्ग हीं स्वराज्य का सच्चा मार्ग है। सत्याग्रह अर्थात् प्रेम-धर्म हीं जीवन का धर्म है। उससे च्युत होना विनाश की ओर तथा उस पर आरूढ़ रहना नवजीवन की ओर ले जाता है।

मो. क. गांधी

[अंग्रेज़ी से]

हिंद स्वराज्य के बारे में

चौथा संस्करण मद्रास: गणेश एन्ड कंपनी, १९२१

मेरी इस छोटी सी किताब की ओर विशाल जनसंख्या का ध्यान खिंच रहा है, यह सचमुच हीं मेरा सौभाग्य है। यह मूल तो गुजराती में लिखी गई है। इसका जीवन-क्रम अजीब है। यह पहले-पहल दक्षिण अफ्रीका में छपनेवाले साप्ताहिक *इंडियन ओपीनियन* में प्रगट हुई थी। १९०८[१] में लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए जहाज़ पर हिंदुस्तानियों के हिंसावादी पंथ को और उसी विचारधारा वाले दक्षिण अफ्रीका के एक वर्ग को दिये गये जवाब के रूप में यह लिखी गई थी। लंदन में रहने वाले हर एक नामी अराजकतावादी हिंदुस्तानी के संपर्क में मैं आया था। उनकी शूरवीरता { बहादुरी } का असर मेरे मन पर पड़ा था, लेकिन मुझे लगा कि उनके जोश ने उलटी राह पकड ली है। मुझे लगा कि हिंसा हिंदुस्तान के दुःखों का इलाज नहीं है, और उसकी संस्कृति { तमद्दुन } को देखते हुए उसे आत्मरक्षा { अपना बचाव } के लिए कोई अलग और ऊँचे प्रकार का शस्त्र काम में लाना चाहिए। दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह उस वक्त मुश्किल से दो साल का बच्चा था। लेकिन उसका विकास इतना हो चुका था कि उसके बारे में कुछ हद तक आत्मविश्वास से लिखने की मैंने हिम्मत की थी। मेरी वह लेखमाला पाठक-वर्ग को इतनी पसन्द आयी कि वह किताब के रूप में प्रकाशित की गई। हिंदुस्तान में उसकी ओर लोगों का कुछ ध्यान गया। बम्बई सरकार ने उसके प्रचार की मनाही कर दी। [२]उसका जवाब मैंने किताब का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित कर के दिया। मुझे लगा कि अपने अंग्रेज़ मित्रों को इस किताब के विचारों से वाकिफ करना उनके प्रति { तरफ़ } मेरा फर्ज है।

मेरी राय में यह किताब एसी है कि यह बालक के हाथ में भी दी जा सकतीं है। यह द्वेषधर्म की जगह प्रेमधर्म सिखाती है; हिंसा की जगह आत्म-बलिदान को रखती है; पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है। इसकी अनेक आवृत्तियाँ हो चुकी हैं; और जिन्हें इसे पढ़ने की परवाह है उनसे इसे पढ़ने की मैं जरूर सिफ़ारिश करूंगा। इसमें से मैंने सिर्फ एक हीं शब्द-और वह एक महिला मित्र की इच्छा को मान कर-रद किया है; इसके सिवा और कोई फेरबदल मैंने इसमें नहीं किया है।

इस किताब में 'आधुनिक सभ्यता' की सख्त टीका की गई है। यह १९०८[३] में लिखी गई थी। इसमें मेरी जो मान्यता प्रगट की गई है, वह आज पहले से ज्यादा मजबूत बनी है। मुझे लगता है कि अगर हिंदुस्तान 'आधुनिक सभ्यता' का त्याग करेगा, तो उससे उसे लाभ हीं होगा।

लेकिन मैं पाठकों को एक चेतावनी देना चाहता हूँ। वे एसा न मान लें कि इस किताब में जिस स्वराज्य की तसवीर मैंने खड़ी की है, वैसा स्वराज्य कायम करने के लिए आज मेरी कोशिशें चल रही हैं। मैं जानता हूँ कि अभी हिंदुस्तान उसके लिए तैयार नहीं है। एसा कहने में शायद ढिठाई का भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का विश्वास है कि इसमें जिस स्वराज्य की तसवीर मैंने खींची है, वैसा स्वराज्य पाने की मेरी निजी कोशिश जरूर चल रही है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि आज मेरी सामूहिक { आम } प्रवृत्ति का ध्येय तो हिंदुस्तान की प्रजा की इच्छा के मुताबिक पार्लियामेन्टरी ढंग का स्वराज्य पाना है। रेलों या अस्पतालों का नाश करने का ध्येय मेरे मन में नहीं है, अगरचे उनका कुदरती नाश हो तो मैं जरूर उसका स्वागत करूंगा। रेल या अस्पताल दोनों में से एक भी ऊँची और बिलकुल शुद्ध संस्कृति की सूचक (चिह्न) नहीं है। ज्यादा से ज्यादा इतना हीं कह सक़ते हैं कि यह एक एसी बुराई है, जो टाली नहीं जा सकती। दोनों में से एक भी हमारे राष्ट्र की नैतिक ऊँचाई में एक इंच की भी बढ़ती नहीं करती। उसी तरह मैं अदालतों के स्थायी { कायमी } नाश का ध्येय मन में नहीं रखता, हालांकि एसा नतीजा आये तो मुझे अवश्य बहुत अच्छा लगेगा। यंत्रों और मिलों के नाश के लिए तो मैं उससे भी कम कोशिश करता हूँ। उसके लिए लोगों की आज जो तैयारी है उससे कहीं ज्यादा सादगी और त्याग की जरूरत रहती है।

इस पुस्तक में बताये हुए कार्यक्रम { प्रोग्राम } के एक हीं हिस्से का आज अमल हो रहा है; वह है अहिंसा। लेकिन मैं अफ़सोस के साथ कबूल करूंगा कि उसका अमल भी इस पुस्तक में दिखाई हुई भावना से नहीं हो रहा है। अगर हो तो हिंदुस्तान एक हीं रोज़ में स्वराज्य पा जाय। हिंदुस्तान अगर प्रेम के सिद्धान्त को अपने धर्म के एक सक्रिय { अमली } अंश के रूप में स्वीकार करे और उसे अपनी राजनीति में शामिल करे, तो स्वराज्य स्वर्ग

से हिंदुस्तान की धरती पर उतरेगा। लेकिन मुझे दुःख के साथ इस बात का भान है कि एसा होना बहुत दूर की बात है ।

ये वाक्य मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि आज के आन्दोलन { तहरीक } को बदनाम करने के लिए इस पुस्तक में से बहुत सी बातों का हवाला दिया जाता मैंने देखा है। मैंने इस मतलब के लेख भी देखे हैं कि मैं कोई गहरी चाल चल रहा हूँ, आज की उथल-पुथल से लाभ उठा कर अपने अजीब खयाल भारत के सिर लादने की कोशिश कर रहा हूँ और हिंदुस्तान को नुकसान पहुँचा कर अपने धार्मिक प्रयोग कर रहा हूँ। इसका मेरे पास यही जवाब है कि सत्याग्रह एसी कोई कच्ची खोखली चीज नहीं है। उसमें कुछ भी दुराव-छिपाव नहीं है, उसमें कुछ भी गुप्तता नहीं है। *हिंद स्वराज्य* में बताये हुए संपूर्ण जीवन-सिद्धांत के एक भाग को आचरण में लाने की कोशिश हो रही है, इसमें कोई शक नहीं। एसा नहीं कि उस समूचे सिद्धान्त का अमल करने में जोखिम है; लेकिन आज देश के सामने जो प्रश्न { सवाल } है उसके साथ जिन हिस्सों का कोई संबंध नहीं है एसे हिस्से मेरे लेखों में से दे कर लोगों को भड़काने में न्याय हरगिज़ नहीं है।

अग्रलेख, *यंग इन्डिया*, २६-१-१९२१

[अंग्रेज़ी से]

---

१. १९०९ में

२. मार्च १९१० में

३. १९०९ में

हिंद स्वराज के प्रकरण

प्रस्तावना

१. कांग्रेस और उसके कर्ता-धर्ता

२. बंग-भंग

३. अशांति और असंतोष

४. स्वराज्य क्या है?

५. इग्लैंड की हालत

६. सभ्यता का दर्शन

७. हिंदुस्तान कैसे गया?

८. हिंदुस्तान की दशा

९. हिंदुस्तान की दशा – रेलगाड़ियाँ

१०. हिंदुस्तान की दशा – हिंदू-मुसलमान

११. हिंदुस्तान की दशा – वकील

१२. हिंदुस्तान की दशा – डॉक्टर

१३. सच्ची सभ्यता कौन सी?

१४. हिंदुस्तान कैसे आजाद हो?

१५. इटली और हिंदुस्तान

१६. गोला-बारूद

१७. सत्याग्रह-आत्मबल

१८. शिक्षा

१९. मशीनें

२०. छुटकारा

परिशिष्ट

कुछ प्रमाणभूत ग्रंथ

प्रतिष्ठित व्यक्तियों की साक्षी

प्रस्तावना

इस विषय { मसला } पर मैंने जो बीस अध्याय { बाब } लिखे हैं, उन्हें पाठकों के सामने रखने की मैं हिम्मत करता हूँ।

जब मुझसे रहा हीं नहीं गया तभी मैंने यह लिखा है। बहुत पढ़ा, बहुत सोचा। विलायत में ट्रान्सवाल डेप्युटेशन के साथ मैं चार माह रहा, उस बीच हो सका उतने हिंदुस्तानियों के साथ मैंने सोच-विचार किया, हो सका उतने अंग्रेज़ों से भी मैं मिला। अपने जो विचार मुझे आखिरी मालूम हुए, उन्हें पाठकों के सामने रखना मैंने अपना फर्ज समझा।

इंडियन ओपीनियन के गुजराती ग्राहक आठ सौ के करीब हैं। हर ग्राहक के पीछे कम से कम दस आदमी दिलचस्पी से यह अखबार पढ़ते हैं, एसा मैंने महसूस किया है। जो गुजराती नहीं जानते, वे दूसरों से पढ़वाते हैं। इन भाइयों ने हिंदुस्तान की हालत के बारे में मुझसे बहुत सवाल किये हैं। एसे हीं सवाल मुझसे विलायत में किये गये थे। इसलिए मुझे लगा कि जो विचार मैंने यों खानगी में बताये, उन्हें सबके सामने रखना गलत नहीं होगा।

जो विचार यहां रखे गये हैं, वे मेरे हैं और मेरे नहीं भी हैं। वे मेरे हैं, क्योंकि उनके मुताबिक बरतने की मैं उम्मीद रखता हूँ; वे मेरी आत्मा में गढ़े-जड़े हुए जैसे हैं। वे मेरे नहीं हैं, क्योंकि सिर्फ मैंने हीं उन्हें सोचा हो सो बात नहीं। कुछ किताबें पढ़ने के बाद वे बने हैं। दिल में भीतर हीं भीतर मैं जो महसूस करता था, उसका इन किताबों ने समर्थन { ताईद } किया।

यह साबित करने की जरूरत नहीं कि जो विचार मैं पाठकों के सामने रखता हूँ, वे हिंदुस्तान में जिन पर (पश्चिमी) सभ्यता की धुन सवार नहीं हुई है एसे बहुतेरे हिंदुस्तानियों के हैं। लेकिन यही विचार यूरोप के हज़ारों लोगों के हैं, यह मैं अपने पाठकों के मन में अपने सबूतों से ही जंचाना चाहता हूं। जिसे इसकी खोज करनी हो, जिसे एसी फुरसत हो, वह आदमी वे किताबें देख सक़ता है। अपनी फुरसत से उन किताबों में से कुछ न कुछ पाठकों के सामने रखने की मेरी उम्मीद है।

इंडियन ओपीनियन के पाठकों या औरों के मन में मेरे लेख पढ़ कर जो विचार आये, उन्हें अगर वे मुझे बतायेंगे तो मैं उनका आभारी रहूँगा।

उद्देश्य सिर्फ देश की सेवा करने का और सत्य की खोज करने का और उसके मुताबिक बरतने का है। इसलिए अगर मेरे विचार गलत साबित हों, तो उन्हें पकड़ रखने का मेरा आग्रह नहीं है। अगर वे सच साबित हों तो दूसरे लोग भी उनके मुताबिक बरतें, एसी देश के भले के लिए साधारण तौर पर मेरी भावना रहेगी।

सुमीते के लिए लेखों को पाठक और संपादक के बीच के संवाद का रूप दिया गया है ।

किलडोनन कॅसल **मोहनदास करमचंद गांधी**

२२-११-१९०९

१. कांग्रेस और उसके कर्ता-धर्ता

पाठक: आजकल हिंदुस्तान में स्वराज्य की हवा चल रही है। सब हिंदुस्तानी आजाद होने के लिए तरस रहें हैं। दक्षिण अफ्रिका में भी वही जोश दिखाई दे रहा है। हिंदुस्तानियों में अपने हक पाने की बड़ी हिम्मत आई हुई मालूम होती है। इस बारे में क्या आप अपने खयाल बतायेंगे?

संपादक: आपने सवाल ठीक पूछा है। लेकिन इसका जवाब देना आसान बात नहीं है। अखबार का एक काम तो है लोगों की भावनायें जानना और उन्हें जाहिर करना; दूसरा काम है लोगों में अमुक जरूरी भावनायें पैदा करना; और तीसरा काम है लोगों में दोष हों तो चाहे जितनी मुसीबतें आने पर भी बेधड़क होकर उन्हें दिखाना। आपके सवाल का जवाब देने में ये तीनों काम साथ-साथ आ जाते हैं। लोगों की भावनायें कुछ हद तक बतानी होंगी, न हों वैसी भावनायें उनमें पैदा करने की कोशिश करनी होगी और उनके दोषों की निंदा भी करनी होगी। फिर भी आपने सवाल किया है, इसलिए उसका जवाब देना मेरा फर्ज मालूम होता है।

पाठक: क्या स्वराज्य की भावना हिंद में पैदा हुई आप देखते हैं?

संपादक: वह तो जब से नेशनल कांग्रेस कायम हुई तभी से देखने में आई है। 'नेशनल' शब्द का अर्थ हीं वही विचार जाहिर करता है।

पाठक: यह तो आपने ठीक नहीं कहा। नौजवान हिंदुस्तानी आज कांग्रेस की परवाह हीं नहीं करते। वे तो उसे अंग्रेज़ों का राज्य निभाने का साधन { औज़ार, ज़रिया } मानते हैं।

संपादक: नौजवानों का एसा खयाल ठीक नहीं है। हिंद के दादा दादाभाई नौरोजी ने जमीन तैयार नहीं की होती, तो नौजवान आज जो बातें कर रहें हैं वह भी नहीं कर पाते। मि. ह्यूम ने जो लेख लिखे, जो फटकारें हमें सुनाई, जिस जोश से हमें जगाया, उसे कैसे भुलाया जाय? सर विलियम वेडरबर्न ने कांग्रेस का मक़सद हासिल करने के लिए अपना तन, मन और धन सब दे दिया था। उन्होंने अंग्रेज़ी राज्य के बारे में जो लेख लिखे हैं, वे आज भी पढ़ने लायक हैं। प्रोफेसर गोखले ने जनता को तैयार करने के लिए, भिखारी के जैसी हालत में रहकर, अपने बीस साल दिये हैं। आज भी वे गरीबी में रहते हैं। मरहूम जस्टिस

बदरूद्दीन ने भी कांग्रेस के जरिये स्वराज्य का बीज बोया था। यों बंगाल, मद्रास, पंजाब वगैरा में कांग्रेस का और हिंद का भला चाहने वाले कई हिंदुस्तानी और अंग्रेज़ लोग हो गये हैं, यह याद रखना चाहिए।

पाठक: ठहरिए, ठहरिए। आप तो बहुत आगे बढ़ गये। मेरा सवाल कुछ है और आप जवाब कुछ और दे रहें हैं। मैं स्वराज्य की बात करता हूँ और आप परराज्य की बात करते हैं। मुझे अंग्रेज़ों का नाम तक नहीं चाहिए और आप तो अंग्रेज़ों का नाम देने लगे। इस तरह तो हमारी गाड़ी राह पर आये, एसा नहीं दिखता। मुझे तो स्वराज्य की हीं बातें अच्छी लगती हैं। दूसरी मीठी सयानी बातों से मुझे संतोष नहीं होगा।

संपादक: आप अधीर हो गये हैं। मैं अधीरपन बरदाश्त नहीं कर सक़ता। आप जरा सब्र करेंग तो आपको जो चाहिए वही मिलेगा। 'उतावली से आम नहीं पकते, दाल नहीं चुरती' – यह कहावत याद रखिए। आपने मुझे रोका और आपको हिंद पर उपकार करनेवालों की बात भी सुननी अच्छी नहीं लगती, यह बताता है कि अभी आपके लिए स्वराज्य दूर है। आपके जैसे बहुत से हिंदुस्तानी हों, तो हम (स्वराज्य से) दूर हट कर पिछड़ जायेंगे। वह बात जरा सोचने लायक है।

पाठक: मुझे तो लगता है कि ये गोल-मोल बातें बनाकर आप मेरे सवाल का जवाब उड़ा देना चाहते हैं। आप जिन्हें हिंदुस्तान पर उपकार करनेवाले मानते हैं, उन्हें मैं एसा नहीं मानता; फिर मुझे किसके उपकार की बात सुननी है? आप जिन्हें हिंद के दादा कहते हैं, उन्होंने क्या उपकार किया? वे तो कहते हैं कि अंग्रेज़ राजकर्ता न्याय करेंगे और उनसे हमें हिलमिल कर रहना चाहिए।

संपादक: मुझे सविनय { अदब से } आपसे कहना चाहिए कि उस पुरूष के बारे में आपका बेअदबी से यों बोलना हमारे लिए शरम की बात है। उनके कामों की ओर देखिए। उन्होंने अपना जीवन हिंद को अर्पण { नज़र } कर दिया है। उनसे यह सबक हमने सीखा। हिंद का खून अंग्रेज़ों ने चूस लिया है, यह सिखानेवाले माननीय दादाभाई हैं। आज उन्हें अंग्रेज़ों पर भरोसा है उससे क्या? हम जवानी के जोश में एक कदम आगे रखते हैं, इससे कया दादाभाई कम पूज्य हो जाते हैं? इससे क्या हम ज्यादा ज्ञानी हो गये? जिस सीढ़ी से हम

ऊपर चढ़े उसको लात न मारने में हीं बुद्धिमानी { अक़लमंदी } है। अगर वह सीढ़ी निकाल दें तो सारी निसैनी गिर जाय, यह हमें याद रखना चाहिए। हम बचपन से जवानी में आते हैं तब बचपन से नफरत नहीं करते, बल्कि उन दिनों को प्यार से याद करते हैं। बरसों तक अगर मुझे कोई पढ़ाता है और उससे मेरी जानकारी जरा बढ़ जाती है, तो इससे मैं अपने शिक्षक { उस्ताद } से ज्यादा ज्ञानी नहीं माना जाऊँगा; अपने शिक्षक को तो मुझे मान { इज़्ज़त } देना हीं पड़ेगा। इसी तरह हिंद के दादा के बारे में समझना चाहिए। उनके पीछे (सारी) हिंदुस्तानी जनता है, यह तो हमें कहना हीं पड़ेगा।

पाठक: यह आपने ठीक कहा। दादाभाई नौरोजी की इज्जत करना चाहिए, यह तो समझ सकते हैं। उन्होंने और उनके जैसे दूसरे पुरूषों ने जो काम किये हैं, उनके बगैर हम आज का जोश महसूस नहीं कर पाते, यह बात ठीक लगती है। लेकिन यही बात प्रोफेसर गोखले साहब के बारे में हम कैसे मान सक़ते हैं? वे तो अंग्रेज़ों के बड़े भाईबंद बन कर बैठे हैं; वे तो कहते हैं कि अंग्रेज़ों से हमें बहुत कुछ सीखना है। अंग्रेजों की राजनीति से हम वाकिफ हो जायें, तभी स्वराज्य की बातचीत की जाय। उन साहब के भाषणों से तो मैं ऊब गया हूँ।

संपादक: आप ऊब गये हैं, यह दिखाता है कि आपका मिज़ाज उतावला है। लेकिन जो नौजवान अपने माँ-बाप के ठंडे मिज़ाज से ऊब जाते हैं और वे (मां-बाप) अगर अपने साथ न दौड़ें तो गुस्सा होते हैं, वे अपने मां-बाप का अनादर { बेअदबी } करते हैं एसा हम समझते हैं। प्रोफेसर गोखले के बारे में भी एसा हीं समझना चाहिए। क्या हुआ अगर प्रोफेसर गोखले हमारे साथ नहीं दौड़ते हैं? स्वराज्य भुगतने की इच्छा रखनेवाली प्रजा अपने बुजुर्गों का तिरस्कार { बेइज़्ज़ती, नफ़रत } नहीं कर सकतीं। अगर दूसरे की इज्जत करने की आदत हम खो बैठे, तो हम निकम्मे हो जायेंगे। जो प्रौढ़ { पुख्ता } और तजरबेकार हैं, वे हीं स्वराज्य भुगत सक़ते हैं, न कि बे-लगाम लोग। और देखिए कि जब प्रोफेसर गोखले ने हिंदुस्तान की शिक्षा { तालीम } के लिए त्याग किया तब एसे कितने हिंदुस्तानी थे? मैं तो खास तौर पर मानता हूँ कि प्रोफेसर गोखले जो कुछ भी करते हैं वह शुद्ध भाव से और हिंदुस्तान का हित मानकर करते हैं। हिंद के लिए अगर अपनी जान भी देनी पड़े तो वे दे देंगे, एसी हिंद के लिए उनकी भक्ति है। वे जो कुछ कहते हैं वह किसी की खुशामद

करने के लिए नहीं, बल्कि सही मानकर कहते हैं। इसलिए हमारे मन में उनके लिए पूज्य भाव होना चाहिए।

पाठक: तो क्या वे साहब जो कहते हैं उसके मुताबिक हमें भी करना चाहिए?

संपादक: मैं एसा कुछ नहीं कहता। अगर हम शुद्ध बुद्धि से अलग राय रखते हैं, तो उस राय के मुताबिक चलने की सलाह खुद प्रोफेसर साहब हमें देंगे। हमारा मुख्य काम तो यह है कि हम उनके कामों की निन्दा न करें; हमसे वे महान हैं एसा माने और यक़ीन रखें कि उनके मुकाबले में हमने हिंद के लिए कुछ भी नहीं किया है। उनके बारे में कुछ अखबार जो अशिष्टतापूर्वक { बेअदबी से } लिखते हैं उसकी हमें निन्दा करनी चाहिए और प्रोफेसर गोखले जैसो को हमें स्वराज्य के स्तंभ { खंभ } मानना चाहिए। उनके खयाल गलत और हमारे हीं सही हैं, या हमारे खयालों के मुताबिक न बरतनेवाले देश के दुश्मन हैं, एसा मान लेना बुरी भावना है।

पाठक: आप जो कुछ कहते हैं वह अब मेरी समझ में कुछ आता है। फिर भी मुझे उसके बारे में सोचना होगा। पर मि. ह्यूम, सर विलियम वेडरबर्न वगैरा के बारे में आपने जो कहा उसमें तो हद हो गई।

संपादक: जो नियम हिंदुस्तानियों के बारे में है, वही अंग्रेज़ों के बारे में समझना चाहिए। सारे के सारे अंग्रेज़ बुरे हैं, एसा तो मैं नहीं मानूँगा। बहुत से अंग्रेज चाहते हैं कि हिंदुस्तान को स्वराज्य मिले। उस प्रजा में स्वार्थ ज्यादा है यह ठीक है, लेकिन उससे हर एक अंग्रेज़ बुरा है एसा साबित नहीं होता। जो हक – न्याय { इन्साफ़ } – चाहते हैं, उन्हें सबके साथ न्याय करना होगा। सर विलियम हिंदुस्तान का बुरा चाहनेवाले नहीं हैं, इतना हमारे लिए काफ़ी है। ज्यों ज्यों हम आगे बढ़ेंगे त्यों त्यों आप देखेंगे कि अगर हम न्याय की भावना से काम लेंगे, तो हिंदुस्तान का छुटकारा जल्दी होगा। आप यह भी देखेंगे कि अगर हम तमाम अंग्रेज़ों से द्वेष { नफ़रत } करेंगे, तो उससे स्वराज्य दूर हीं जानेवाला है; लेकिन अगर उनके साथ भी न्याय करेंगे, तो स्वराज्य के लिए हमें उनकी मदद मिलेगी।

पाठक: अभी तो ये सब मुझे फिजूल की बड़ी बड़ी बातें लगती हैं। अंग्रेज़ों की मदद मिले और उससे स्वराज्य मिल जाय, ये तो आपने दो उलटी बातें कहीं। लेकिन इस सवाल का

हल अभी मुझे नहीं चाहिए। उसमें समय बिताना बेकार है। स्वराज्य कैसे मिलेगा, यह जब आप बतायेंगे तब शायद आपके विचार मैं समझ सकूँ तो समझ सकूँ। फिलहाल तो अंग्रेज़ों की मदद की आपकी बात ने मुझे शंका में डाल दिया है और आपके विचारों के खिलाफ मुझे भरमा दिया है। इसलिए यह बात आप आगे न बढ़ाये तो अच्छा हो।

संपादक: मैं अंग्रेज़ों की बात को बढ़ाना नहीं चाहता। आप शंका में पड़ गये, इसकी कोई फिकर नहीं। मुझे जो महत्त्व [अहम्] की बात कहनी है, उसे पहले से हीं बता देना ठीक होगा। आपकी शंका को धीरज से दूर करना मेरा फर्ज है।

पाठक: आपकी यह बात मुझे पसन्द आयी। इससे मुझे जो ठीक लगे वह बात कहने की मुझ में हिम्मत आई है। अभी मेरी एक शंका रह गई है। कांग्रेस के आरम्भ से स्वराज्य की नींव पड़ी, यह कैसे कहा जा सक़ता है?

संपादक: देखिये, कांग्रेस ने अलग अलग जगहों पर हिंदुस्तानियों को इकट्ठा करके उनमें 'हम एक-राष्ट्र हैं' एसा जोश पैदा किया। कांग्रेस पर सरकार की कड़ी नज़र रहती थी। महसूल का हक प्रजा को होना चाहिए, एसी मांग कांग्रेस ने हमेशा की है। जैसा स्वराज्य कॅनेडा में है वैसा स्वराज्य कांग्रेस ने हमेशा चाहा है। वैसा स्वराज्य मिलेगा या नहीं मिलेगा, वैसा स्वराज्य हमें चाहिए या नहीं चाहिए, उससे बढ़कर दूसरा कोई स्वराज्य है या नहीं, यह सवाल अलग है। मुझे दिखाना तो इतना हीं है कि कांग्रेस ने हिंद को स्वराज्य का रस चखाया। इसका जस कोई और लेना चाहे तो वह ठीक न होगा, और हम भी एसा माने तो बेक़दर { कृतघ्न } ठहरेंगे। इतना हीं नहीं, बल्कि जो मक़सद हम हासिल करना चाहते हैं उसमें मुसीबतें पैदा होंगी। कांग्रेस को अलग समझने और स्वराज्य के खिलाफ मानने से हम उसका उपयोग नहीं कर सक़ते।

२. बंग-भंग

पाठक: आप कहते हैं उस तरह विचार करने पर यह ठीक लगता है कि कांग्रेस ने स्वराज्य की नींव डाली। लेकिन यह तो आप मानेंगे कि वह सही जागृति { जाग } नहीं थी। सही जागृति कब और कैसे हुई?

संपादक: बीज हमेशा हमें दिखाई नहीं देता। वह अपना काम जमीन के नीचे करता है और जब खुद मिट जाता है तब पेड़ जमीन के ऊपर देखने में आता है। कांग्रेस के बारे में एसा हीं समझिये। जिसे आप सही जागृति मानते हैं वह तो बंग-भंग से हुई, जिसके लिए हम लोर्ड कर्ज़न के आभारी हैं। बंग-भंग के वक्त बंगालियों ने कर्ज़न साहब से बहुत प्रार्थना को, लेकिन वे साहब अपनी सत्ता के मद में लापरवाह रहें। उन्होंने मान लिया कि हिंदुस्तानी लोग सिर्फ बकवास हीं करेंगे, उनसे कुछ भी नहीं होगा। उन्होंने अपमानभरी भाषा का प्रयोग किया और जबरदस्ती बंगाल के डुकड़े किये। हम यह मान सक़ते हैं कि उस दिन से अंग्रेज़ी राज्य के भी टुकड़े हुए। बंग-भंग से जो धक्का अंग्रेज़ी हुकूमत को लगा, वैसा और किसी काम से नहीं लगा। इसका मतलब यह नहीं कि जो दूसरे गैर-इन्साफ़ हुए, वे बंग-भंग से कुछ कम थे। नमक-महसूल कुछ कम गैर-इन्साफ़ नहीं है। एसा और तो आगे हम बहुत देखेंगे। लेकिन बंगाल के डुकड़े करने का विरोध { मुखालिफ़त } करने के लिए प्रजा तैयार थी। उस वक्त प्रजा की भावना बहुत तेज़ थी। उस समय बंगाल के बहुतेरे नेता अपना सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार थे। अपनी सत्ता, अपनी ताक़त को वे जानते थे। इसलिए तुरन्त आग भड़क उठी। अब वह बुझनेवाली नहीं है, उसे बुझाने की जरूरत भी नहीं है। ये टुकड़े कायम नहीं रहेंगे, बंगाल फिर एक हो जाएगा। लेकिन अंग्रेज़ी जहाज़ में जो दरार पड़ी है, वह तो हमेशा रहेगी हीं। वह दिन-ब-दिन चौड़ी होती जाएगी। जागा हुआ हिंद फिर सो जाय, वह नामुमकिन है। बंग-भंग को रद करने की मांग स्वराज्य की मांग के बराबर है। बंगाल के नेता यह बात खूब जानते हैं। अंग्रेज़ी हुकूमत भी यह बात समझती है। इसीलिए टुकड़े रद नहीं हुए। ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते हैं, त्यों त्यों प्रजा तैयार होती जाती है। प्रजा एक दिन में नहीं बनती; उसे बनने में कई बरस लग जाते हैं।

पाठक: बंग-भंग के नतीजे आपने कया देखे?

संपादक: आज तक हम मानते आये हैं कि बादशाह से अर्ज करना चाहिए और बैसा करने पर भी दाद न मिले तो दुःख सहन करना चाहिए; अलबत्ता, अर्ज तो करते हीं रहना चाहिए। बंगाल के टुकड़े होने के बाद लोगों ने देखा कि हमारी अर्ज के पीछे कुछ ताक़त चाहिए, लोगों में कष्ट सहन करने की शक्ति चाहिए। यह नया जोश टुकड़े होने का अहम नतीजा माना जाएगा। यह जोश अखबारों के लेखों में दिखाई दिया। लेख कड़े होने लगे। जो बात लोग डरते हुए या चोरी-चुपके करते थे, वह खुल्लमखुल्ला होने लगी — लिखी जाने लगी। स्वदेशी का आन्दोलन { तहरीक } चला। अंग्रेजों को देखकर छोटे-बड़े सब भागते थे, पर अब नहीं डरते; मार-पीट से भी नहीं डरते; जेल जाने में भी उन्हें कोई हर्ज नहीं मालूम होता; और हिंद के पुत्ररत्न आज देशनिकाला भुगतते हुए (विदेशों में) विराजमान हैं। यह चीज उस अर्ज से अलग है। यों लोगों में खलबली मच रही है। बंगाल की हवा उत्तर में पंजाब तक और (दक्षिण में) मद्रास इलाके में कन्याकुमारी तक पहुँच गई है।

पाठक: इसके अलावा और कोई जानने लायक नतीजा आपको सूझता है? **संपादक:** बंग-भंग से जैसे अंग्रेज़ी जहाज़ में दरार पड़ी है, वैसे हीं हम में भी दरार – फूट— पड़ी है। बड़ी घटनाओं के परिणाम { नतीज़े } भी यों बड़े हीं होते हैं। हमारे नेताओं में दो दल हो गये हैं: एक मोडरेट और दूसरा एक्स्ट्रीमिस्ट। उनको हम 'धीमे' और 'उतावले' कह सक़ते हैं। ('नरम दल' व 'गरम दल' शब्द भी चलते हैं।) कोई मोडरेट को डरपोक पक्ष और एक्स्ट्रीमिस्ट को हिम्मतवाला पक्ष भी कहते हैं। सब अपने अपने खयालों के मुताबिक इन दो शब्दों का अर्थ करते हैं। यह सच है कि ये जो दल हुए हैं, उनके बीच जहर भी पैदा हुआ है। एक दल दूसरे का भरोसा नहीं करता, दोनों एक-दूसरे को ताना मारते हैं। सुरत कांग्रेस के समय करीब करीब मार-पीट भी हो गई। ये जो दो दल हुए हैं वह देश के लिए अच्छी निशानी { चिह्न } नहीं है, एसा मुझे तो लगता है। लेकिन मैं यह भी मानता हूँ कि एसे दल लम्बे अरसे तक टिकेंगे नहीं। इस तरह कब तक ये दल रहेंगे, यह तो नेताओं पर आधार रखता है।

३. अशांति और असंतोष

पाठक: तो आपने बंग-भंग को जागृति का कारण माना। उससे फैली हुई अशांति को ठीक समझा जाय या नहीं?

संपादक: इनसान नींद में से उठता है तो अंगड़ाई लेता है, इधर-उधर घूमता है और अशान्त { बेचैन } रहता है। उसे पूरा भान { सुध } आने में कुछ वक्त लगता है। उसी तरह अगरचे बंग-भंग से जागृति आई है, फिर भी बेहोशी नहीं गई है। अभी हम अंगड़ाई लेने की हालत में हैं। अभी अशान्ति की हालत है। जैसे नींद और जाग के बीच की हालत जरूरी मानी जानी चाहिए और इसलिए वह ठीक कही जाएगी, वैसे बंगाल में और उस कारण से हिंदुस्तान में जो अशान्ति फैली है वह भी ठीक है। अशान्ति है यह हम जानते हैं, इसलिए शान्ति का समय आने की शक्यता { इमकान } है। नींद से उठने के बाद हमेशा अंगड़ाई लेने की हालत में हम नहीं रहते, लेकिन देर-सबेर अपनी शक्ति के मुताबिक पूरे जागते हीं हैं। इसी तरह इस अशान्ति में से हम जरूर छूटेंगे। अशान्ति किसी को नहीं भाती।

पाठक: अशान्ति का दूसरा रूप क्या है?

संपादक: अशान्ति असल में असंतोष है। उसे आजकल हम 'अनरेस्ट' कहते हैं। कांग्रेस के जमाने में वह 'डिस्कन्टेन्ट' कहलाता था। मि. ह्यूम हमेशा कहते थे कि हिंदुस्तान में असंतोष फैलाने की जरूरत है। यह असंतोष बहुत उपयोगी चीज है। जब तक आदमी अपनी चालू हालत में खुश रहता है, तब तक उसमें से निकलने के लिए उसे समझाना मुश्किल है। इसलिए हर एक सुधार के पहले असंतोष होना हीं चाहिए। चालू चीज से ऊब जाने पर हीं उसे फेंक देने को मन करता है। एसा असंतोष हम में महान हिंदुस्तानियों की और अंग्रेज़ों की पुस्तकें पढ़कर पैदा हुआ है। उस असंतोष से अशान्ति पैदा हुई; और उस अशान्ति में कई लोग मरे, कई बरबाद हुए, कई जेल गये, कई को देशनिकाला हुआ। आगे भी एसा होगा; और होना चाहिए। ये सब लक्षण { निशानियां } अच्छे माने जा सक़ते हैं। लेकिन इनका नतीजा बुरा भी आ सक़ता है।

४. स्वराज्य क्या है?

पाठक: कांग्रेस ने हिंदुस्तान को एक-राष्ट्र बनाने के लिए क्या किया, बंग-भंग से जागृति कैसे हुई, अशान्ति और असंतोष कैसे फैले, यह सब जाना। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि स्वराज्य के बारे में आपके क्या खयाल हैं। मुझे डर है कि शायद हमारी समझ में फरक हो।

संपादक: फरक होना मुमकिन है। स्वराज्य के लिए आप-हम सब अधीर बन रहें हैं, लेकिन वह कया है इस बारे में हम ठीक राय पर नहीं पहुँचे हैं। अंग्रेज़ों को निकाल बाहर करना चाहिए, यह विचार बहुतों के मुँह से सुना जाता है; लेकिन उन्हें क्यों निकालना चाहिए, इसका कोई ठीक खयाल किया गया हो एसा नहीं लगता। आपसे हीं एक सवाल मैं पूछता हूँ। मान लीजिये कि हम मांगते हैं उतना सब अंग्रेज हमें दे दें, तो फिर उन्हें (यहाँ से) निकाल देने की जरूरत आप समझते हैं?

पाठक: मैं तो उनसे एक हीं चीज मांगूँगा। वह है: मेहरबानी करके आप हमारे मुल्क से चले जायें। यह माँग वे कबूल करें और हिंदुस्तान से चले जायें, तब भी अगर कोई एसा अर्थ का अनर्थ { सही का गलत अर्थ } करें कि वे यहीं रहते हैं, तो मुझे उसकी परवाह नहीं होगी। तब फिर हम एसा मानेंगे कि हमारी भाषा में कुछ लोग 'जाना' का अर्थ 'रहना' करते हैं।

संपादक: अच्छा, हम मान लें कि हमारी माँग के मुताबिक अंग्रेज़ चले गये। उसके बाद आप क्या करेंगे?

पाठक: इस सवाल का जवाब अभी से दिया हीं नहीं जा सक़ता। वे किस तरह जाते हैं, उस पर बाद की हालत का आधार रहेगा। मान लें कि आप कहते हैं उस तरह वे चले गये, तो मुझे लगता है कि उनका बनाया हुआ विधान { दस्तूर } हम चालू रखेंगे और राज का कारोबार चलायेंगे। कहने से हीं वे चले जायें तो हमारे पास लश्कर तैयार हीं होगा, इसलिए हमें राजकाज चलाने में कोई मुश्किल नहीं आयेगी।

संपादक: आप भले हीं एसा माने, लेकिन मैं नहीं मानूँगा। फिर भी मैं इस बात पर ज्यादा बहस नहीं करना चाहता। मुझे तो आपके सवाल का जवाब देना है। वह जवाब मैं आपसे हीं कुछ सवाल करके अच्छी तरह दे सक़ता हूँ। इसलिए कुछ सवाल आपसे करता हूँ। हम अंग्रेज़ों को क्यों निकालना चाहते हैं?

पाठक: इसलिए कि उनके राज-कारोबार से देश कंगाल होता जा रहा है। वे हर साल देश से धन ले जाते हैं। वे अपनी हीं चमड़ी के लोगों को बड़े ओहदे देते हैं, हमें सिर्फ गुलामी में रखते हैं, हमारे साथ बेअदबी का बरताव करते हैं और हमारी जरा भी परवा नहीं करते।

संपादक: अगर वे धन बाहर न ले जायें, नम्र बन जायें और हमें बड़े ओहदे दें, तो उनके रहने में आपको कुछ हर्ज है?

पाठक: यह सवाल हीं बेकार है। बाघ अपना रूप { सूरत } पलट दे तो उसकी भाईबंदी से कोई नुकसान है? एसा सवाल आपने पूछा, यह सिर्फ वक्त बरबाद करने के खातिर हीं। अगर बाघ अपना स्वभाव { मिज़ाज } बदल सके, तो अंग्रेज़ लोग अपनी आदत छोड़ सक़ते हैं। जो कभी होनेवाला नहीं है वह होगा, एसा मानना मनुष्य की रीत हीं नहीं है।

संपादक: कॅनेडा को जो राजसत्ता मिली है, बोअर लोगों को जो राजसत्ता मिली है, वैसी हीं हमें मिले तो?

पाठक: यह भी बेकार सवाल है। हमारे पास उनकी तरह गोलाबारूद हो तब वैसा जरूर हो सक़ता है। लेकिन उन लोगों के जितनी सत्ता जब अंग्रेज़ हमें देंगे तब हम अपना हीं झंडा रखेंगे। जैसा जापान वैसा हिंदुस्तान। अपना जंगी बेड़ा, अपनी फौज़ और अपनी जाहोजलाली { समृद्धि, मालामाली } होगी। और तभी हिंदुस्तान का सारी दुनिया में बोलबाला होगा।

संपादक: यह तो आपने अच्छी तसवीर खींची। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अंग्रेज़ी राज्य तो चाहिए, पर अंग्रेज़ (शासक) नहीं चाहिए। आप बाघ का स्वभाव तो चाहते हैं, लेकिन बाघ नहीं चाहते। मतलब यह हुआ कि आप हिंदुस्तान को अंग्रेज़ बनाना चाहते हैं। और हिंदुस्तान जब अंग्रेज़ बन जाएगा तब वह हिंदुस्तान नहीं कहा जाएगा, लेकिन सच्चा इंग्लिस्तान कहा जाएगा। यह मेरी कल्पना का स्वराज्य नहीं है।

पाठक: मैंने तो जैसा मुझे सूझता है वैसा स्वराज्य बतलाया। हम जो शिक्षा पाते हैं वह अगर कुछ काम की हो, स्पेन्सर, मिल वगैरा महान लेखकों के जो लेख हम पढ़ते हैं वे कुछ काम के हों, अंग्रेज़ों की पार्लियामेन्ट पार्लियामेन्टों की माता हो, तो फिर बेशक मुझे तो लगता है कि हमें उनकी नकल करनी चाहिए; वह यहाँ तक कि जैसे वे अपने मुल्क में दूसरों को घुसने नहीं देते वैसे हम भी दूसरों को न घुसने दें। यों तो उन्होंने अपने देश में जो किया है, वैसा और जगह अभी देखने में नहीं आता। इसलिए उसे तो हमें अपने देश में अपनाना हीं चाहिए। लेकिन अब आप अपने विचार बतलाइए।

संपादक: अभी देर है। मेरे विचार अपने आप इस चर्चा में आपको मालूम हो जायेंगे। स्वराज्य को समझना आपको जितना आसान लगता है उतना हीं मुझे मुश्किल लगता है। इसलिए फिलहाल मैं आपको इतना हीं समझाने की कोशिश करूँगा कि जिसे आप स्वराज्य कहते हैं वह सचमुच स्वराज्य नहीं है।

५. इंग्लैंड की हालत

पाठक: आप जो कहते हैं उस पर से तो मैं यही अंदाज लगाता हूँ कि इंग्लैंड में जो राज्य चलता है वह ठीक नहीं है और हमारे लायक नहीं है।

संपादक: आपका यह खयाल सही है। इंग्लैंड में आज जो हालत है वह सचमुच दयनीय – तरस खाने लायक है। मैं तो भगवान से यही माँगता हूँ कि हिंदुस्तान की एसी हालत कभी न हो। जिसे आप पार्लियामेन्टों की माता कहते हैं, वह पार्लियामेन्ट तो बांझ और बेसवा { वेश्या } है। ये दोनों शब्द बहुत कड़े हैं, तो भी उसे अच्छी तरह लागू होते हैं। मैंने उसे बांझ कहा, क्योंकि अब तक उस पार्लियामेन्ट ने अपने आप एक भी अच्छा काम नहीं किया। अगर उस पर जोर – दबाव डालनेवाला कोई न हो तो वह कुछ भी न करे, एसी उसकी कुदरती हालत है। और वह बेसवा है क्योंकि जो मंत्रि-मंडल उसे रखे उसके पास वह रहती है। आज उसका मालिक एस्क्विथ है, तो कल बालफर होगा और परसों कोई तीसरा।

पाठक: आपके बोलने में कुछ व्यंग्य { भेद } है। बांझ शब्द को अब तक आपने लागू नहीं किया। पार्लियामेन्ट लोगों की बनी है, इसलिए बेशक लोगों के दबाव से हीं वह काम करेगी। वही उसका गुण { सिफ़त } है, उसके ऊपर का अंकुश {काबू} है।

संपादक: यह बड़ी गलत बात है। अगर पार्लियामेन्ट बांझ न हो तो इस तरह होना चाहिए – लोग उसमें अच्छे से अच्छे मेम्बर चुनकर भेजते हैं। मेम्बर तनख्वाह नहीं लेते, इसलिए उन्हें लोगों की भलाई के लिए (पार्लियामेन्ट में) जाना चाहिए। लोग खुद सुशिक्षित-संस्कारी { तालीमयाफ़्ता } माने जाते हैं, इसलिए उनसे भूल नहीं होती एसा हमें मानना चाहिए। एसी पार्लियामेन्ट को अर्जी की जरूरत नहीं होनी चाहिए, न दबाव की। उस पार्लियामेन्ट का काम इतना सरल होना चाहिए कि दिन-ब-दिन उसका तेज बढ़ता जाय और लोगों पर उसका असर होता जाय। लेकिन इससे उलटे इतना तो सब कबूल करते हैं कि पार्लियामेन्ट के मेम्बर दिखावटी और स्वार्थी { खुदगर्ज } पाये जाते हैं। सब अपना मतलब साधने की सोचते हैं। सिर्फ डर के कारण हीं पार्लियामेन्ट कुछ काम करती है। जो काम आज किया वह कल उसे रद करना पड़ता है। आज तक एक भी चीज को पार्लियामेन्ट में ठिकाने

लगाया हो एसी कोई मिसाल देखने में नहीं आती। बड़े सवालों की चर्चा जब पार्लियामेन्ट में चलती है, तब उसके मेम्बर पैर फैलाकर लेटते हैं या बैठे बैठे झपकियाँ लेते हैं। उस पार्लियामेन्ट में मेम्बर इतने जोरों से चिल्लाते हैं कि सुननेवाले हैरान-परेशान हो जाते हैं। उसके एक महान लेखक ने उसे 'दुनिया की बातूनी' जैसा नाम दिया है। मेम्बर जिस पक्ष { दल, पार्टी } के हों उस पक्ष के लिए अपना मत वे बगैर सोचे-विचारे देते हैं, देने को बँधे हुए हैं। अगर कोई मेम्बर इसमें अपवादरूप { इस्तुनाके तीर पर } निकल आये, तो उसकी कमबख़्ती हीं समझिये। जितना समय और पैसा पार्लियामेन्ट खर्च करती है उतना समय और पैसा अगर अच्छे लोगों को मिले तो प्रजा का उद्धार { बेहतर हालत } हो जाय। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट महज़ प्रजा का खिलौना है और वह खिलौना प्रजा को भारी खर्च में डालता है। ये विचार मेरे खुद के हैं एसा आप न माने। बड़े और विचारशील अंग्रेज़ एसा विचार रखते हैं। एक मेम्बर ने तो यहाँ तक कहा है कि पार्लियामेन्ट धर्मिष्ठ { दीनदार } आदमी के लायक नहीं रही। दूसरे मेम्बर ने तो यहाँ तक कहा है कि पार्लियामेन्ट एक 'बच्चा' (बेबी) है। बच्चों को कभी आपने हमेशा बच्चे हीं रहते देखा है? आज सात सौ बरस के बाद भी अगर पार्लियामेन्ट बच्चा हीं हो, तो वह बड़ी कब होगी?

पाठक: आपने मुझे सोच में डाल दिया। यह सब मुझे तुरन्त मान लेना चाहिए, एसा तो आप नहीं कहेंगे। आप बिलकुल निराले विचार मेरे मन में पैदा कर रहें हैं। मुझे उन्हें हजम करना होगा। अच्छा, अब 'बेसवा' शब्द का विवेचन { तफ़सीर } कीजिये।

संपादक: मेरे विचारों को आप तुरन्त नहीं मान सक़ते, यह बात ठीक है। उसके बारे में आपको जो साहित्य पढ़ना चाहिए वह आप पढ़ेंगे, तो आपको कुछ खयाल आयेगा। पार्लियामेन्ट को मैंने बेसवा कहा, वह भी ठीक है। उसका कोई मालिक नहीं है। उसका कोई एक मालिक नहीं हो सक़ता। लेकिन मेरे कहने का मतलब इतना हीं नहीं है। जब कोई उसका मालिक बनता है – जैसे प्रधानमंत्री – तब भी उसकी चाल एक सरीखी नहीं रहती। जैसे बुरे हाल { दुर्दशा } बेसवा के होते हैं, वैसे हीं सदा पार्लियामेन्ट के होते हैं। प्रधानमंत्री को पार्लियामेन्ट की थोड़ी हीं परवाह रहती है। वह तो अपनी सत्ता के मद में मस्त रहता है। अपना दल कैसे जीते इसी की लगन उसे रहती है। पार्लियामेन्ट सही काम

कैसे करे, इसका वह बहुत कम विचार करता है। अपने दल को बलवान बनाने के लिए प्रधानमंत्री पार्लियामेन्ट से कैसे कैसे काम करवाता है, इसकी मिसालें जितनी चाहिए उतनी मिल सकतीं हैं। यह सब सोचने लायक है।

पाठक: तब तो आज तक जिन्हें हम देशाभिमानी { हुज-उल-वतन } और ईमानदार समझते आये हैं, उन पर भी आप टूट पढ़ते हैं।

संपादक: हाँ, यह सच है। मुझे प्रधानमंत्रियों से द्वेष { बैर } नहीं है। लेकिन तजरबे से मैंने देखा है कि वे सच्चे देशाभिमानी नहीं कहे जा सक़ते। जिसे हम घूस कहते हैं वह घूस वे खुल्लमखुल्ला नहीं लेते-देते, इसलिए भले हीं वे ईमानदार कहे जायें। लेकिन उनके पास बसीला { सिफारिश } काम कर सक़ता है। वे दूसरों से काम निकालने के लिए उपाधि { इलकाब } वगैरा की घूस बहुत देते हैं। मैं हिम्मत के साथ कह सक़ता हूँ कि उनमें शुद्ध भावना और सच्ची ईमानदारी नहीं होती।

पाठक: जब आपके एसे खयाल हैं तो जिन अंग्रेज़ों के नाम से पार्लियामेन्ट राज करती है उनके बारे में अब कुछ कहिये, ताकि उनके स्वराज्य का पूरा खयाल मुझे आ जाये।

संपादक: जो अंग्रेज 'वोटर' हैं (चुनाव करते हैं), उनकी धर्म-पुस्तक (बाइबल) तो है अखबार। वे अखबारों से अपने विचार बनाते हैं। अखबार अप्रामाणिक { बेईमान } होते हैं, एक हीं बात को दो शकलें देते हैं। एक दलवाले उसी बात को बड़ी बनाकर दिखलाते हैं, तो दूसरे दलवाले उसी को छोटी कर डालते हैं। एक अखबारवाला किसी अंग्रेज़ नेता को प्रामाणिक { ईमानदार } मानेगा, तो दूसरा अखबारवाला उसको अप्रामाणिक मानेगा। जिस देश में एसे अखबार हैं उस देश के आदमियों की कैसी दुर्दशा होगी?

पाठक: यह तो आप हीं बताइये।

संपादक: उन लोगों के विचार घड़ी-घड़ी में बदलते हैं। उन लोगों में यह कहावत है कि सात सात बरस में रंग बदलता है। घड़ी के लोलक की तरह वे इधर-उधर घूमा करते हैं। जमकर वे बैठ हीं नहीं सक़ते। कोई दौर-दमामवाला आदमी हो और उसने अगर बड़ी बड़ी बातें कर दीं या दावतें दे दीं, तो वे नक्कारची की तरह उसीके ढोल पीटने लग जाते हैं। एसे लोगों की यार्लियामेन्ट भी एसी हीं होती है। उनमें एक बात जरूर है। वह यह कि

वे अपने देश को खोयेंगे नहीं। अगर किसी ने उस पर बुरी नजर डाली, तो वे उसकी मिट्टी पलीद कर देंगे। लेकिन इससे उस प्रजा में सब गुण आ गये, या उस प्रजा की नक़ल की जाय, एसा नहीं कह सक़ते। अगर हिंदुस्तान अंग्रेज़ प्रजा की नक़ल करे तो हिंदुस्तान पामाल हो जाय, एसा मेरा पक्का खयाल है।

पाठक: अंग्रेज़ प्रजा एसी हो गई है, इसके आप क्या कारण मानते हैं?

संपादक: इसमें अंग्रेज़ों का कोई खास कसूर नहीं है, पर उनकी – बल्कि यूरोप की – आजकल की सभ्यता का कसूर है। वह सभ्यता नुकसान-देह है और उससे यूरोप की प्रजा पामाल होती जा रही है।

६. सभ्यता का दर्शन

पाठकः अब तो आपको सभ्यता { तहजीब } की भी बात करनी होगी। आपके हिसाब से तो यह सभ्यता बिगाड़ करनेवाली है।

संपादक: मेरे हिसाब से हीं नहीं, बल्कि अंग्रेज लेखकों के हिसाब से भी यह सभ्यता बिगाड़ करनेवाली है। उसके बारे में बहुत किताबें लिखी गई हैं। वहाँ इस सभ्यता के खिलाफ मंडल भी कायम हो रहें हैं। एक लेखक ने 'सभ्यता, उसके कारण और उसकी दवा' नाम की किताब लिखी है। उसमें उसने यह साबित किया है कि यह सभ्यता एक तरह का रोग है।

पाठक: यह सब हम क्यों नहीं जानते?

संपादक: इसका कारण तो साफ है। कोई भी आदमी अपने खिलाफ जानेवाली बात करे एसा शायद हीं होता है। आज की सभ्यता के मोह में फँसे हुए लोग उसके खिलाफ नहीं लिखेंगे, उलटे उसको सहारा मिले एसी हीं बातें और दलीलें ढूँढ निकालेंगे। यह वे जान-बुझकर करते हैं एसा भी नहीं है। वे जो लिखते हैं उसे खुद सच मानते हैं। नींद में आदमी जो सपना देखता है, उसे वह सही मानता है। जब उसकी नींद खुलती है तभी उसे अपनी गलती मालूम होती है। एसी हीं दशा सभ्यता के मोह में फँसे हुए आदमी की होती है। हम जो बातें पढ़ते हैं वे सभ्यता की हिमायत करनेवालों की लिखी बातें होती हैं। उनमें बहुत होशियार और भले आदमी हैं। उनके लेखों से हम चौंधिया जाते हैं। यों एक के बाद दूसरा आदमी उसमें फँसता जाता है।

पाठक: यह बात आपने ठीक कही। अब आपने जो कुछ पढ़ा और सोचा है, उसका खयाल मुझे दीजिये।

संपादक: पहले तो हम यह सोचें कि सभ्यता किस हालत का नाम है। इस सभ्यता की सही पहचान तो यह है कि लोग बाहरी (दुनिया) की खोजों में और शरीर के सुख में धन्यता – सार्थकता { पुरअरमानी } और पुरूषार्थ { बहादुरी, बडा काम } मानते हैं। इसकी कुछ मिसालें लें। सौ साल पहले यूरोप के लोग जैसे घरों में रहते थे उनसे ज्यादा अच्छे घरों में आज वे रहते हैं; यह सभ्यता की निशानी मानी जाती है। इसमें शरीर के सुख की बात है।

इसके पहले लोग चमड़े के कपड़े पहनते थे और भालों का इस्तेमाल करते थे। अब वे लंबे पतलून पहनते हैं और शरीर को सजाने के लिए तरह-तरह के कपड़े बनवाते हैं; और भाले के बदले एक के बाद एक पाँच गोलियां छोड़ सके एसी चक्करवाली बन्दूक इस्तेमाल करते हैं | यह सभ्यता की निशानी है | किसी मुल्क के लोग, जो जूते वगैरा नहीं पहनते हों, जब यूरोप के कपड़े पहनना सीखते हैं, तो जंगली हालत में से सभ्य हालत में आये हुए माने जाते हैं। पहले यूरोप में लोग मामूली हल की मदद से अपने लिए जात-मेहनत करके जमीन जोतते थे। उसकी जगह आज भाप के यंत्रों से हल चलाकर एक आदमी बहुत सारी जमीन जोत सक़ता है और बहुत-सा पैसा जमा कर सकता है। यह सभ्यता की निशानी मानी जाती है। पहले लोग कुछ हीं किताबें लिखते थे और वे अनमोल मानी जाती थीं | आज हर कोई चाहे जो लिखता है और छपवाता है और लोगों के मन को भरमाता है। यह सभ्यता की निशानी है। पहले लोग बैलगाड़ी से रोज़ बारह कोस की मंजिल तय करते थे। आज रेलगाड़ी से चार सौ कोस की मंजिल मारते हैं। यह तो सभ्यता की चोटी { शिखर } मानी गई है। यह सभ्यता जैसे जैसे आगे बढ़ती जाती है वैसे वैसे यह सोचा जाता है कि लोग हवाई जहाज़ से सफ़र करेंगे और थोड़े हीं घंटों में दुनिया के किसी भी भाग { हिस्सा } में जा पहुँचेंगे। लोगों को हाथ-पैर हिलाने की जरूरत नहीं रहेगी। एक बटन दबाया कि आदमी के सामने पहनने की पोशाक हाजिर हो जायेगी, दूसरा बटन दबाया कि उसे अखबार मिल जायेंगे, तीसरा दबाया कि उसके लिए गाड़ी तैयार हो जायेगी; हर हमेशा नये भोजन मिलेंगे, हाथ-पैर का काम हीं नहीं पड़ेगा, सारा काम कल { यंत्र } से हीं किया जाएगा। पहले जब लोग लड़ना चाहते थे तो एक-दूसरे का शरीर-बल आजमाते थे। आज तो तोप के एक गोले से हज़ारों जाने ली जा सकतीं हैं। यह सभ्यता की निशानी है। पहले लोग खुली हवा में अपने को ठीक लगे उतना काम स्वतंत्रता से करते थे। अब हज़ारों आदमी अपने गुज़ारे के लिए इकट्ठा होकर बड़े कारखानों में या खानों में काम करते हैं। उनकी हालत जानवर से भी बदतर हो गई है। उन्हें सीसे वगैरा के कारखानों में जान को जोखिम में डालकर काम करना पड़ता है। इसका लाभ पैसेदार लोगों को मिलता है। पहले लोगों को मार-पीट कर गुलाम बनाया जाता था; आज लोगों को पैसे का और भोग { मज़ा, आनन्द } का लालच देकर गुलाम बनाया जाता है। पहले जैसे रोग नहीं थे वैसे रोग आज

लोगों में पैदा हो गये हैं और उसके साथ डॉक्टर खोज करने लगे हैं कि ये रोग कैसे मिटाये जायें। एसा करने से अस्पताल बढ़े हैं। यह सभ्यता की निशानी मानी जाती है। पहले लोग पत्र लिखते थे तब खास कासिद उसे ले जाता था और उसके लिए काफ़ी खर्च लगता था। आज मुझे किसी को गालियाँ देने के लिए पत्र लिखना हो, तो एक पैसे में मैं गालियाँ दे सक़ता हूँ, किसी को मुझे मुबारकबाद देना हो तो भी मैं उसी दाम में पत्र भेज सक़ता हूँ। यह सभ्यता की निशानी है। पहले लोग दो या तीन बार खाते थे और वह भी खुद हाथ से पकाई हुई रोटी और थोड़ी तरकारी। अब तो हर दो घंटे पर खाना चाहिए, और वह यहाँ तक कि लोगों को खाने से फ़ुरसत हीं नहीं मिलती। और कितना कहूँ? यह सब आप किसी भी पुस्तक में पढ़ सक़ते हैं। ये सब सभ्यता की सच्ची निशानियाँ मानी जाती हैं। और अगर कोई भी इससे भिन्न बात समझाये, तो वह भोला है एसा निश्चय { खसूसन } हीं मानिए। सभ्यता तो मैंने जो बताई वही मानी जाती है। उसमें नीति या धर्म की बात हीं नहीं है। सभ्यता के हिमायती साफ कहते हैं कि उनका काम लोगों को धर्म सिखाने का नहीं है। धर्म तो ढोंग है, एसा कुछ लोग मानते हैं। और कुछ लोग धर्म का दम्भ करते हैं, नीति की बातें भी करते हैं। फिर भी मैं आपसे बीस बरस के अनुभव { तजरबा } के बाद कहता हूँ कि नीति के नाम से अनीति सिखलाई जाती है। ऊपर की बातों में नीति हो हीं नहीं सकतीं, यह कोई बच्चा भी समझ सक़ता है। शरीर का सुख कैसे मिले, यही आज की सभ्यता ढूँढ़ती है; और यही देने की वह कोशिश करती है। परंतु वह सुख भी नहीं मिल पाता।

यह सभ्यता तो अधर्म है और यह यूरोप में इतने दरजे तक फैल गयी है कि वहाँ के लोग आधे पागल जैसे देखने में आते हैं। उनमें सच्ची कूबत नहीं है; वे नशा करके अपनी ताक़त कायम रखते हैं। एकान्त { तनहाई } में वे बैठ हीं नहीं सक़ते। जो स्त्रियाँ घर की रानियाँ होनी चाहिए, उन्हें गलियों में भटकना पड़ता है, या कोई मज़दूरी करनी पड़ती है। इंग्लैंड में हीं चालीस लाख गरीब औरतों को पेट के लिए सख्त मज़दूरी करनी पड़ती है, और आजकल इसके कारण 'सफ्रेजेट' का आन्दोलन { तहरीक } चल रहा है।

यह सभ्यता एसी है कि अगर हम धीरज धर कर बैठे रहेंगे, तो सभ्यता की चपेट में आये हुए लोग खुद की जलाई हुई आग में जल मरेंगे। पैगम्बर मोहम्मद साहब की सीख

के मुताबिक यह शैतानी सभ्यता है। हिंदू धर्म इसे निरा 'कलजुग' कहता है। मैं आपके सामने इस सभ्यता का हूबहू चित्र नहीं खींच सक़ता। यह मेरी शक्ति के बाहर है। लेकिन आप समझ सकेंगे कि इस सभ्यता के कारण अंग्रेज़ प्रजा में सड़न ने घर कर लिया है। यह सभ्यता दूसरों का नाश करनेवाली और खुद नाशवान है। इससे दूर रहना चाहिए और इसीलिए ब्रिटिश और दूसरी पार्लियामेन्टें बेकार हो गई हैं। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट अंग्रेज़ प्रजा की गुलामी की निशानी है, यह पक्की बात है। आप पढ़ेंगे और सोचेंगे तो आपको भी एसा हीं लगेगा। इसमें आप अंग्रेज़ों का दोष { कसूर } न निकालें। उन पर तो हमें दया आनी चाहिए। वे काबिल प्रजा हैं इसलिए किसी दिन उस जाल से निकल जाएँगे एसा मैं मानता हूँ। वे साहसी और मेहनती हैं। मूल में उनके विचार अनीतिभरे नहीं हैं, इसलिए उनके बारे में मेरे मन में उत्तम { बहुत अच्छे } खयाल हीं है। उनका दिल बुरा नहीं है। यह सभ्यता उनके लिए कोई अमिट रोग नहीं है। लेकिन अभी वे उस रोग में फंसे हुए हैं, यह तो हमें भूलना हीं नहीं चाहिए।

७. हिंदुस्तान कैसे गया?

पाठक: आपने सभ्यता के बारे में बहुत कुछ कहा; और मुझे विचार में डाल दिया। अब तो मैं इस संकट { पसोपेश, दुबिधा } में आ पड़ा हूँ कि यूरोप की प्रजा से मैं क्या लूँ और क्या न लूँ। लेकिन एक सवाल मेरे मन में तुरन्त उठता है: अगर आज की सभ्यता बिगाड़ करनेवाली है, एक रोग है, तो एसी सभ्यता में फंसे हुए अंग्रेज़ हिंदुस्तान को कैसे ले सके? इसमें वे कैसे रह सक़ते हैं?

संपादक: आपके इस सवाल का जवाब कुछ आसानी से दिया जा सकेगा और अब थोड़ी देर में हम स्वराज्य के बारे में भी विचार कर सकेंगे। आपके इस सवाल का जवाब अभी देना बाकी है, यह मैं भूला नहीं हूँ। लेकिन आपके आखरी सवाल पर हम आये। हिंदुस्तान अंग्रेज़ों ने लिया सो बात नहीं है, बल्कि हमने उन्हें दिया है। हिंदुस्तान में वे अपने बल से नहीं टिके हैं, बल्कि हमने उन्हें टिका रखा है। वह कैसे सो देखें। आपको मैं याद दिलाता हूँ कि हमारे देश में वे दरअसल व्यापार के लिए आये थे। आप अपनी कंपनी बहादुर को याद कीजिये। उसे बहादुर किसने बनाया? वे बेचारे तो राज करने का इरादा भी नहीं रखते थे। कंपनी के लोगों की मदद किसने की? उनकी चाँदी को देखकर कौन मोह में पड़ जाता था? उनका माल कौन बेचता था? इतिहास { तवारीख } सबूत देता है कि यह सब हम हीं करते थे। जल्दी पैसा पाने के मतलब से हम उनका स्वागत करते थे। हम उनकी मदद करते थे। मुझे भाँग पीने की आदत हो और भाँग बेचनेवाला मुझे भाँग बेचे, तो कसूर बेचनेवाले का निकालना चाहिए या अपना खुद का? बेचनेवाले का कसूर निकालने से मेरा व्यसन { लत, कुटेव } थोड़े हीं मिटनेवाला है? एक बेचनेवाले को भगा देंगे तो क्या दूसरे मुझे भाँग नहीं बेचेंगे? हिंदुस्तान के सच्चे सेवक को अच्छी तरह खोज करके इसकी जड़ तक पहुँचना होगा। ज्यादा खाने से अगर मुझे अजीर्ण हुआ हो, तो मैं पानी का दोष निकाल कर अजीर्ण {बदहजमी } दूर नहीं कर सकूंगा। सच्चा डॉक्टर तो वह है जो रोग की जड़ खोजे। आप अगर हिंदुस्तान के रोग के डॉक्टर होना चाहते हैं, तो आपको रोग की जड़ खोजनी हीं पड़ेगी।

पाठक: आप सच कहते हैं। अब मुझे समझाने के लिए आपको दलील करने की जरूरत नहीं रहेगी। मैं आपके विचार जानने के लिए अधीर बन गया हूँ। अब हम बहुत हीं दिलचस्प विषय { बात } पर आ गये हैं, इसलिए मुझे आप अपने हीं विचार बतायें। जब उनके बारे में शंका पैदा होगी तब मैं आपको रोकूँगा।

संपादक: बहुत अच्छा। पर मुझे डर है कि आगे चलने पर हमारे बीच फिर से मतभेद जरूर होगा। फिर भी जब आप मुझे रोकेंगे तभी मैं दलील में उतरूँगा। हमने देखा कि अंग्रेज़ व्यापारियों को हमने बढ़ावा दिया तभी वे हिंदुस्तान में अपने पैर फैला सके। वैसे हीं जब हमारे राजा लोग आपस में झगड़े तब उन्होंने कंपनी बहादुर से मदद माँगी। कंपनी बहादुर व्यापार और लड़ाई के काम में कुशल { होशियार } थी। उसमें उसे नीति-अनीति की अड़चन नहीं थी। व्यापार बढ़ाना और पैसा कमाना, यही उसका धंधा था। उसमें जब हमने मदद दी तब उसने हमारी मदद ली और अपनी कोठियाँ बढ़ाई। कोठियों का बचाव करने के लिए उसने लश्कर रखा। उस लश्कर का हमने उपयोग किया, इसलिए अब उसे दोष देना बेकार है। उस वक्त हिंदू-मुसलमानों के बीच बैर था। कंपनी को उससे मौक़ा मिला। इस तरह हमने कंपनी के लिए एसे संजोग पैदा किये, जिससे हिंदुस्तान पर उसका अधिकार हो जाय। इसलिए हिंदुस्तान गया एसा कहने के बजाय ज्यादा सच यह कहना होगा कि हमने हिंदुस्तान अंग्रेज़ों को दिया।

पाठक: अब अंग्रेज़ हिंदुस्तान को कैसे रख सक़ते हैं सो कहिये।

संपादक: जैसे हमने हिंदुस्तान उन्हें दिया वैसे हीं हम हिंदुस्तान को उनके पास रहने देते हैं। उन्होंने तलवार से हिंदुस्तान लिया एसा उनमें से कुछ कहते हैं, और एसा भी कहते हैं कि तलवार से वे उसे रख रहें हैं। ये दोनों बातें गलत हैं। हिंदुस्तान को रखने के लिए तलवार किसी काम में नहीं आ सकतीं; हम खुद हीं उन्हें यहाँ रहने देते हैं।

नेपोलियन ने अंग्रेज़ों को व्यापारी प्रजा कहा है। वह बिलकुल ठीक बात है। वे जिस देश को (अपने काबू में) रखते हैं, उसे व्यापार के लिए रखते हैं, यह जानने लायक है। उनकी फ़ौजें और जंगी बेड़े सिर्फ व्यापार की रक्षा { रखवाली } के लिए हैं। जब ट्रान्सवाल में व्यापार का लालच नहीं था तब मि. ग्लेडस्टन को तुरन्त सूझ गया कि ट्रान्सवाल अंग्रेज़ों

को नहीं रखना चाहिए। जब ट्रान्सवाल में व्यापार का आकर्षण देखा तब उससे लड़ाई की गई और मि. चेम्बरलेन ने यह ढूँढ निकाला कि ट्रान्सवाल पर अंग्रेज़ों की हुकूमत है। मरहूम प्रेसिडेन्ट क्रूगर से किसी ने सवाल किया: 'चाँद में सोना है या नहीं?' उसने जवाब दिया: "चाँद में सोना होने की संभावना नहीं है, क्योंकि सोना होता तो अंग्रेज़ अपने राज के साथ उसे जोड़ देते।' पैसा उनका खुदा है, यह ध्यान में रखने से सब बातें साफ हो जायेगीं।

तब अंग्रेज़ों को हम हिंदुस्तां में सिर्फ अपनी ग़रज़ से रखते हैं। हमें उनका व्यापार पसंद आता है। वे चालबाजी करके हमें रिझाते हैं और रिझाकर हमसे काम लेते हैं। इसमें उनका दोष निकालना उनकी सत्ता को निभाने जैसा है। इसके अलावा, हम आपस में झगड़कर उन्हें ज्यादा बढ़ावा देते हैं।

अगर आप ऊपर की बात को ठीक समझते हैं, तो हमने यह साबित कर दिया कि अंग्रेज़ व्यापार के लिए यहाँ आये, व्यापार के लिए यहाँ रहते हैं और उनके रहने में हम हीं मददगार हैं। उनके हथियार तो बिलकुल बेकार हैं।

इस मौके पर मैं आपको याद दिलाता हूँ कि जापान में अंग्रेज़ी झंडा लहराता है एसा आप मानिये। जापान के साथ अंग्रेज़ों ने जो करार किया है वह अपने व्यापार के लिए किया है। और आप देखेंगे कि जापान में अंग्रेज़ लोग अपना व्यापार खूब जमायेंगे। अंग्रेज़ अपने माल के लिए सारी दुनिया को अपना बाजार बनाना चाहते हैं। यह सच है कि एसा वे नहीं कर सकेंगे। इसमें उनका कोई कसूर नहीं माना जा सक्रता। अपनी कोशिश में वे कोई कसर नहीं रखेंगे।

८. हिंदुस्तान की दशा

पाठक: हिंदुस्तान अंग्रेजों के हाथ में क्यों है, यह समझा जा सक़ता है। अब मैं हिंदुस्तान की हालत के बारे में आपके विचार जानना चाहता हूँ।

संपादक: आज हिंदुस्तान की रंक { कंगाल } दशा है। यह आपसे कहते हुए मेरी आँखों में पानी भर आता है और गला सूख जाता है। यह बात मैं आपको पूरी तरह समझा सकूंगा या नहीं, इस बारे में मुझे शक है। मेरी पक्की राय है, कि हिंदुस्तान अंग्रेज़ों से नहीं, बल्कि आजकल की सभ्यता { तहजीब } से कुचला जा रहा है, उसकी चपेट में वह फँस गया है। उसमें से बचने का अभी भी उपाय है, लेकिन दिन-ब-दिन समय बीतता जा रहा है। मुझे तो धर्म प्यारा है; इसलिए पहला दुःख मुझे यह है कि हिंदुस्तान धर्मभ्रष्ट होता जा रहा है। धर्म का अर्थ मैं यहाँ हिंदू, मुस्लिम या जरथोस्ती धर्म नहीं करता। लेकिन इन सब धर्मों के अन्दर जो 'धर्म' है वह हिंदुस्तान से जा रहा है; हम ईश्वर से विमुख { अलग } होते जा रहें हैं।

पाठक: सो कैसे?

संपादक: हिंदुस्तान पर यह तोहमत है कि हम आलसी हैं और गोरे लोग मेहनती और उत्साही { पुरजोश } हैं। इसे हमने मान लिया है। इसलिए हम अपनी हालत को बदलना चाहते हैं।

हिंदू, मुस्लिम, जरथोस्ती, ईसाई सब धर्म सिखाते हैं कि हमें दुनियावी बातों के बारे में मंद { सुस्त } और धार्मिक { दीनी } बातों के बारे में उत्साही रहना चाहिए। हमें अपने दुनियावी लोभ की हद बाँधनी चाहिए और धार्मिक लोभ को खुला छोड़ देना चाहिए। हमारा उत्साह { जोश } धार्मिक लोभ में हीं रहना चाहिए।

पाठक: इससे तो मालूम होता है कि आप पाखंडी { ढोंगी } बनने की तालीम देते हैं। धर्म के बारे में एसी बातें करके ठग लोग दुनिया को ठगते आये हैं और आज भी ठग रहें हैं।

संपादक: आप धर्म पर गलत आरोप { तोहमत } लगाते हैं। पाखंड तो सब धर्मों में है। जहाँ सूरज है वहाँ अंधेरा रहता हीं है। परछाई हर एक चीज के साथ जूड़ी रहती है। धार्मिक

ठगों को आप दुनियावी ठगों से अच्छे पाएँगे। सभ्यता में जो पाखंड मैं आपको बता चुका हूँ, वैसा पाखंड धर्म में मैंने कभी नहीं देखा।

पाठक: यह कैसे कहा जा सक़ता है? धर्म के नाम पर हिंदू-मुसलमान लड़े, धर्म के नाम पर ईसाइयों में बड़े बड़े युद्ध हुए। धर्म के नाम पर हज़ारों बेगुनाह लोग मारे गये, उन्हें जला दिया गया, उन पर बड़ी बड़ी मुसीबतें गुजारी गईं। यह तो सभ्यता से बदतर हीं माना जाएगा।

संपादक: तो मैं कहूँगा कि यह सब सभ्यता के दुःख से ज्यादा बरदाश्त हो सकने जैसा है। आपने जो कुछ कहा वह पाखंड है, एसा सब लोग समझते हैं। इसलिए पाखंड में फंसे हुए लोग मर गए कि सारा सवाल हल हो गया। जहाँ भोले लोग हैं वहाँ एसा हीं चलता रहेगा। लेकिन उसका असर हमेशा के लिए बुरा नहीं रहता। सभ्यता की होली में जो लोग जल मरे हैं, उनकी तो कोई हद हीं नहीं है। उसकी खूबी यह है कि लोग उसे अच्छा मानकर उसमें कूद पड़ते हैं। फिर वे न तो रहते दीन के और न रहते दुनिया के। वे सच बात को बिलकुल भूल जाते हैं। सभ्यता चूहे की तरह फूंककर काटती है। उसका असर जब हम जानेंगे तब पुराने वहम मुकाबले में हमें मीठे लगेंगे। मेर कहना यह नहीं कि हमें उन वहमों को कायम रखना चाहिए। नहीं, उनके खिलाफ तो हम लड़ेंगे हीं; लेकिन वह लड़ाई धर्म को भूल कर नहीं लड़ी जायेगी, बल्कि सही तौर पर धर्म को समझकर और उसकी रक्षा करके लड़ी जायेगी।

पाठक: तब तो आप यह भी कहेंगे कि अंग्रेज़ों ने हिंदुस्तान में शान्ति का जो सुख हमें दिया है वह बेकार है।

संपादक: आप भले शांति देखते हों, पर मैं तो शान्ति का सुख नहीं देखता।

पाठक: तब तो ठग, पिंडारी, भील वगैरा देश में जो त्रास { जुल्म } गुजारते थे उसमें आपके खयाल से कोई बुराई नहीं थी?

संपादक: आप जरा सोचेंगे तो मालूम होगा कि उनका त्रास बहुत कम था। अगर सचमुच उनका त्रास भयंकर होता, तो प्रजा का जड़मूल से कभी का नाश हो जाता। और, हाल की शान्ति तो नाम की हीं है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस शान्ति से हम नामर्द, नपुंसक

और डरपोक बन गये हैं। भीलों और पिंडारीयों का स्वभाव अंग्रेज़ों ने बदल दिया है, एसा हम न मान लें। हम पर एसा जुल्म होता हो तो हमें उसे बरदाश्त करना चाहिए। लेकिन दूसरे लोग हमें उस जुल्म से बचाये, यह तो हमारे लिए बिलकुल कलंक { दाग } जैसा है। हम कमजोर और डरपोक बनें, इससे तो भीलों के तीर-कमान से मरना मुझे ज्यादा पसंद है। उस हालत में जो हिंदुस्तान था, उसका जोश कुछ दूसरा हीं था। मैकोले ने हिंदुस्तानियों को नामर्द माना, वह उसकी अधम अज्ञान दशा को बताता है। हिंदुस्तानी नामर्द कभी नहीं थे। यह जान लीजिये कि जिस देश में पहाड़ी लोग बसते हैं, जहाँ बाघ-भेड़िये रहते हैं, उस देश के रहनेवाले अगर सचमुच डरपोक हों तो उनका नाश हीं हो जाये। आप कभी खेतों में गये हैं? मैं आपसे यकीनन कहता हूँ कि खेतों में हमारे किसान आज भी निर्भय { निडर } होकर सोते हैं, जब कि अंग्रेज़ और आप वहाँ सोने के लिए आनाकानी करेंगे। बल तो निर्भयता { निडरता } में है; बदन पर माँस के लोंदे होने में बल नहीं है। आप थोड़ा भी सोचेंगे तो इस बात को समझ जायेंगे।

और आपको, जो स्वराज्य चाहनेवाले हैं, मैं सावधान { आगाह } करता हूँ कि भील, पिंडारी और ठग ये सब हमारे हीं देशी भाई हैं। उन्हें जीतना मेरा और आपका काम है। जब तक आपके हीं भाई का डर आपको रहेगा, तब तक आप कभी मक़सद हासिल नहीं कर सकेंगे।

९. हिंदुस्तान की दशा – रेलगाड़ियाँ

पाठक: हिंदुस्तान की शान्ति के बारे में मेरा जो मोह था वह आपने ले लिया। अब तो याद नहीं आता कि आपने मेरे पास कुछ भी रहने दिया हो।

संपादक: अब तक तो मैंने आपको सिर्फ धर्म की दशा का हीं खयाल कराया है। लेकिन हिंदुस्तान रंक { कंगाल } क्यों है, इस बारे में मैं अपने विचार आपको बताऊँगा तब तो शायद आप मुझसे नफरत हीं करेंगे; क्योंकि आज तक हमने और आपने जिन चीजों को लाभकारी माना है, वे मुझे तो नुकसानदेह हीं मालूम होती हैं।

पाठक: वे क्या हैं?

संपादक: हिंदुस्तान को रेलों ने, वकीलों ने और डॉक्टरों ने कंगाल बना दिया है। यह एक एसी हालत है कि अगर हम समय पर नहीं चेतेंगे, तो चारों ओर से घिर कर बरबाद हो जायेंगे।

पाठक: मुझे डर है कि हमारे विचार कभी मिलेंगे या नहीं। आपने तो जो कुछ अच्छा देखने में आया है और अच्छा माना गया है, उसी पर धावा बोल दिया है! अब बाकी कया रहा?

संपादक: आपको धीरज रखना होगा। सभ्यता नुकसान करनेवाली कैसे है, यह तो मुश्किल से मालूम हो सक़ता है। डॉक्टर आपको बतलायेंगे कि क्षय का मरीज मौत के दिन तक भी जीने की आशा रखता है। क्षय का रोग बाहर दिखाई देनेवाली हानि नहीं पहुँचाता और वह रोग आदमी को झूठी लाली देता है। इससे बीमार विश्वास में बहता रहता है और आख़िर डूब जाता है। सभ्यता का भी एसा हीं समझिये। वह एक अदृश्य { गैबी } रोग है। उससे चेत कर रहिये।

पाठक: अच्छा, तो अब आप रेल-पुराण सुनाइये।

संपादक: आपके दिल में यह बात तुरन्त उठेगी कि अगर रेल न हो तो अंग्रेज़ों का काबू हिंदुस्तान पर जितना है उतना तो नहीं हीं रहेगा। रेल से महामारी फैली है। अगर रेलगाड़ी न हो तो कुछ हीं लोग एक जगह से दूसरी जगह जायेंगे और इस कारण संक्रामक { फैलानेवाले } रोग सारे देश में नहीं पहुँच पायेंगे। पहले हम कुदरती तौर पर हीं 'सेग्रेगेशन'

– सूतक – पालते थे। रेल से अकाल बढ़े हैं, क्योंकि रेलगाड़ी की सुविधा { सुभीता } के कारण लोग अपना अनाज बेच डालते हैं। जहाँ महंगाई हो वहाँ अनाज खिंच जाता है, लोग लापरवाह बनते हैं और उससे अकाल का दुःख बढ़ता है। रेल से दुष्टता { नीचता } बढ़ती है। बुरे लोग अपनी बुराई तेजी से फैला सक़ते हैं। हिंदुस्तान में जो पवित्र { पाक } स्थान थे, वे अपवित्र { नापाक } बन गये हैं। पहले लोग बड़ी मुसीबत से वहाँ जाते थे। एसे लोग वहाँ सच्ची भावना से ईश्वर को भजने जाते थे; अब तो ठगों की टोली सिर्फ ठगने के लिए वहाँ जाती है।

पाठक: यह तो आपने इकतरफा बात कही। जैसे खराब लोग वहाँ जा सक़ते हैं वैसे अच्छे भी तो जा सक़ते हैं। वे क्यों रेलगाड़ी का पूरा लाभ नहीं लेते?

संपादक: जो अच्छा होता है वह बीरबहूटी की तरह धीरे चलता है। उसकी रेल से नहीं बनती। अच्छा करनेवाले के मन में स्वार्थ नहीं रहता। वह जल्दी नहीं करेगा। वह जानता है कि आदमी पर अच्छी बात का असर डालने में बहुत समय लगता है। बुरी बात हीं तेजी से बढ़ सकतीं है। घर बनाना मुश्किल है, तोड़ना सहल है। इसलिए रेलगाड़ी हमेशा दुष्टता का हीं फैलाव करेगी, यह बराबर समझ लेना चाहिए। उससे अकाल फैलेगा या नहीं, इस बारे में कोई शास्त्रकार मेरे मन में घड़ी भर शंका पैदा कर सक़ता है; लेकिन रेल से दुष्टता बढ़ती है यह बात जो मेरे मन में जम गयी है वह मिटनेवाली नहीं है।

पाठक: लेकिन रेल का सबसे बड़ा लाभ दूसरे सब नुकसानों को भुला देता है। रेल है तो आज हिंदुस्तान में एक-राष्ट्र का जोश देखने में आता है। इसलिए मैं तो कहूँगा कि रेल के आने से कोई नुकसान नहीं हुआ।

संपादक: यह आपकी भूल हीं है। आपको अंग्रेज़ों ने सिखाया है कि आप एक-राष्ट्र नहीं थे और एक-राष्ट्र बनने में आपको सैकड़ों बरस लगेंगे। यह बात बिलकुल बेबुनियाद है। जब अंग्रेज़ हिंदुस्तान में नहीं थे तब हम एक-राष्ट्र थे, हमारे विचार एक थे, हमारा रहन-सहन एक था। तभी तो अंग्रेजों ने यहाँ एक-राज्य कायम किया। भेद तो हमारे बीच बाद में उन्होंने पैदा किये।

पाठक: यह बात मुझे ज्यादा समझनी होगी।

संपादक: मैं जो कहता हूँ वह बिना सोचे-समझे नहीं कहता। एक-राष्ट्र का यह अर्थ नहीं कि हमारे बीच कोई मतभेद नहीं था; लेकिन हमारे मुख्य लोग पैदल या बैलगाड़ी में हिंदुस्तान का सफ़र करते थे, वे एक-दूसरे की भाषा सीखते थे और उनके बीच कोई अन्तर नहीं था। जिन दूरदर्शी { दूरंदेश } पुरूषों ने सेतुबंध रामेश्वर, जगन्नाथपुरी और हरद्वार की यात्रा ठहराई { निश्चित की }, उनका आपकी राय में क्या खयाल होगा? वे मूर्ख नहीं थे, यह तो आप कबूल करेंगे। वे जानते थे कि ईश्वर-भजन घर बैठे भी होता है। उन्हीं ने हमें यह सिखाया है कि मन चँगा तो कठौती में गंगा। लेकिन उन्होंने सोचा कि कुदरत ने हिंदुस्तान को एक-देश बनाया है, इसलिए वह एक-राष्ट्र होना चाहिए। इसलिए उन्होंने अलग अलग स्थान तय करके लोगों को एकता का विचार इस तरह दिया, जैसा दुनिया में और कहीं नहीं दिया गया है। दो अंग्रेज जितने एक नहीं हैं उतने हम हिंदुस्तानी एक थे और एक हैं। सिर्फ हम और आप जो खुद को सभ्य मानते हैं उन्हीं के मन में एसा आभास (भ्रम) पैदा हुआ कि हिंदुस्तान में हम अलग अलग राष्ट्र हैं। रेल के कारण हम अपने को अलग राष्ट्र मानने लगे और रेल के कारण एक-राष्ट्र का खयाल फिर से हमारे मन में आने लगा, एसा आप माने तो मुझे हर्ज नहीं है। अफ़ीमची कह सक़ता है कि अफ़ीम के नुकसान का पता मुझे अफ़ीम से चला, इसलिए अफ़ीम अच्छी चीज है। यह सब आप अच्छी तरह सोचिए। अभी आपके मन में और भी शंकाएँ उठेंगी। लेकिन आप खुद उन सबको हल कर सकेंगे।

पाठक: आपने जो कुछ कहा उस पर मैं सोचूँगा। लेकिन एक सवाल मेरे मन में इसी समय उठता है। मुसलमान हिंदुस्तान में आये उसके पहले के हिंदुस्तान की बात आपने की। लेकिन अब तो मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयों की हिंदुस्तान में बड़ी संख्या है। वे एक-राष्ट्र नहीं हो सक़ते। कहा जाता है कि हिंदू-मुसलमानों में कट्टर बैर है। हमारी कहावतें भी एसी हीं हैं। 'मियाँ और महादेव की नहीं बनेगी।' हिंदू पूर्व में ईश्वर को पूजता है, तो मुस्लिम पश्चिम में पूजता है। मुसलमान हिंदू को बुतपरस्त – मूर्तिपूजक – मानकर उससे नफरत करता है। हिंदू मूर्तिपूजक है, मुसलमान मूर्ति को तोड़नेवाला है। हिंदू गाय को पूजता है, मुसलमान उसे मारता है। हिंदू अहिंसक है, मुसलमान हिंसक। यों पग-पग पर जो विरोध { बेमेल } है, वह कैसे मिटे और हिंदुस्तान एक कैसे हो?

१० . हिंदुस्तान की दशा – हिंदू-मुसलमान

संपादक: आपका आखरी सवाल बड़ा गम्भीर मालूम होता है। लेकिन सोचने पर वह सहल मालूम होगा। यह सवाल उठा है, उसका कारण भी रेल, वकील और डॉक्टर हैं। वकीलों और डॉक्टरों का विचार तो अभी करना बाकी है। रेलों का विचार हम कर चुके। इतना मैं जोड़ता हूँ कि मनुष्य इस तरह पैदा किया गया है कि अपने हाथ-पैर से बने उतनी हीं आने-जाने वगैरा की हलचल उसे करनी चाहिए। अगर हम रेल वगैरा साधनों से दौड़धूप करें हीं नहीं, तो बहुत पेचीदे सवाल हमारे सामने आयेंगे हीं नहीं। हम खुद होकर दुःख को न्योतते हैं। भगवान ने मनुष्य की हद उसके शरीर की बनावट से हीं बाँध दी, लेकिन मनुष्य ने उस बनावट की हद को लाँघने के उपाय { तरकीबें } ढूँढ निकाले। मनुष्य को अकल इसलिए दी गई है कि उसकी मदद से वह भगवान को पहचाने। पर मनुष्य ने अकल का उपयोग भगवान को भूलने में किया। मैं अपनी कुदरती हद के मुताबिक अपने आसपास रहनेवालों की हीं सेवा कर सक़ता हूँ; पर मैंने तुरन्त अपनी मगरूरी में ढूँढ निकाला कि मुझे तो सारी दुनिया की सेवा अपने तन से करनी चाहिए। एसा करने में अनेक धर्मों के और कई तरह के लोगों का साथ होगा। यह बोझ मनुष्य उठा हीं नहीं सकता और इसलिए अकुलाता है। इस विचार से आप समझ लेंगे कि रेलगाड़ी सचमुच एक तूफानी साधन है। मनुष्य रेलगाड़ी का उपयोग करके भगवान को भूल गया है।

पाठक: पर मैं तो अब जो सवाल मैंने उठाया है उसका जवाब सुनने को अधीर हो रहा हूँ। मुसलमानों के आने से हमारा एक-राष्ट्र रहा या मिटा?

संपादक: हिंदुस्तान में चाहे जिस धर्म के आदमी रह सक़ते हैं; उससे वह एक-राष्ट्र मिटनेवाला नहीं है। जो नये लोग उसमें दाखिल होते हैं, वे उसकी प्रजा को तोड़ नहीं सक़ते, वे उसकी प्रजा में घुलमिल जाते हैं। एसा हो तभी कोई मुल्क एक-राष्ट्र माना जाएगा। एसे मुल्क में दूसरे लोगों का समावेश करने का गुण होना चाहिए। हिंदुस्तान एसा था और आज भी है। यों तो जितने आदमी उतने धर्म एसा मान सक़ते हैं। एक-राष्ट्र होकर रहनेवाले लोग एक-दूसरे के धर्म में दखल नहीं देते; अगर देते हैं तो समझना चाहिए कि वे एक-राष्ट्र होने लायक नहीं हैं। अगर हिंदू माने कि सारा हिंदुस्तान सिर्फ हिंदुओं से भरा होना चाहिए, तो

यह एक निरा सपना है। मुसलमान अगर एसा माने कि उसमें सिर्फ मुसलमान हीं रहें, तो उसे भी सपना हीं समझिये। फिर भी हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, जो इस देश को अपना वतन मानकर बस चुके हैं एक-देशी, एक-मुल्की हैं, वे देशी-भाई हैं, और उन्हें एक-दूसरे के स्वार्थ के लिए भी एक होकर रहना पड़ेगा। दुनिया के किसी भी हिस्से में एक-राष्ट्र का अर्थ एक-धर्म नहीं किया गया है; हिंदुस्तान में तो एसा था हीं नहीं।

पाठक: लेकिन दोनों कौमों के कट्टर बैर का क्या?

संपादक: 'कट्टर बैर' शब्द दोनों के दुश्मन ने खोज निकाला है। जब हिंदू-मुसलमान झगड़ते थे तब वे एसी बातें भी करते थे। झगड़ा तो हमारा सबका बंद हो गया है। फिर कट्टर बैर काहे का? और इतना याद रखिए कि अंग्रेज़ों के आने के बाद हीं हमारा झगड़ा बन्द हुआ एसा नहीं है। हिंदू लोग मुसलमान बादशाहों के मातहत और मुसलमान हिंदू राजाओं के मातहत रहते आये हैं। दोनों को बाद में समझ में आ गया कि झगड़ने से कोई फायदा नहीं; लड़ाई से कोई अपना धर्म नहीं छोड़ेंगे और कोई अपनी जिद भी नहीं छोड़ेंगे। इसलिए दोनों ने मिलकर रहने का फैसला किया। झगड़े तो फिर से अंग्रेज़ों ने शुरू करवाये।

'मियां और महादेव की नहीं बनती' इस कहावत का भी एसा हीं समझिये। कुछ कहावतें हमेशा के लिए रह जाती हैं और नुकसान करती हीं रहती हैं। हम कहावत की धुन में इतना भी याद नहीं रखते कि बहुतेरे हिंदुओं और मुसलमानों के बाप-दादे एक हीं थे, हमारे अंदर एक हीं खून है। क्या धर्म बदला इसलिए हम आपस में दुश्मन बन गये? धर्म तो एक हीं जगह पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं। हम दोनों अलग-अलग रास्ते लें, इससे क्या हो गया? उसमें लड़ाई काहे की?

और एसी कहावतें तो शैवों और वैष्णवों में भी चलती हैं; पर इससे कोई यह नहीं कहेगा कि वे एक-राष्ट्र नहीं हैं। वेदधर्मियों और जैनों के बीच बहुत फर्क माना जाता है, फिर भी इससे वे अलग राष्ट्र नहीं बन जाते। हम गुलाम हो गये हैं, इसीलिए अपने झगड़े हम तीसरे के पास ले जाते हैं।

जैसे मुसलमान मूर्ति का खंडन करनेवाले हैं, वैसे हिंदुओं में भी मूर्ति का खंडन करनेवाला एक वर्ग देखने में आता है। ज्यों ज्यों सही ज्ञान बढ़ेगा त्यों त्यों हम समझते जायेंगे कि हमें पसन्द न आनेवाला धर्म दूसरा आदमी पालता हो, तो भी उससे बैरभाव रखना हमारे लिए ठीक नहीं; हम उस पर जबरदस्ती न करें।

पाठक: अब गोरक्षा के बारे में अपने विचार बताइये।

संपादक: मैं खुद गाय को पूजता हूँ यानी मान देता हूँ। गाय हिंदुस्तान की रक्षा करनेवाली है, क्योंकि उसकी संतान पर हिंदुस्तान का, जो खेती-प्रधान देश है, आधार है। गाय कई तरह से उपयोगी जानवर है। वह उपयोगी जानवर है, यह तो मुसलमान भाई भी कबूल करेंगे।

लेकिन जैसे मैं गाय को पूजता हूँ वैसे मैं मनुष्य को भी पूजता हूँ। जैसे गाय उपयोगी है वैसे मनुष्य भी – फिर चाहे वह मुसलमान हो या हिंदू – उपयोगी है। तब कया गाय को बचाने के लिए मैं मुसलमान से लडूँगा? क्या उसे मैं मारूँगा? एसा करने से मैं मुसलमान का और गाय का भी दुश्मन बनूँगा। इसलिए मैं कहूँगा कि गाय की रक्षा करने का एक यही उपाय है कि मुझे अपने मुसलमान भाई के सामने हाथ जोड़ने चाहिए और उसे देश के खातिर गाय को बचाने के लिए समझाना चाहिए। अगर वह न समझे तो मुझे गाय को मरने देना चाहिए, क्योंकि वह मेरे बस की बात नहीं। अगर मुझे गाय पर अत्यंत { बेहद } दया आती हो तो अपनी जान दे देनी चाहिए, लेकिन मुसलमान की जान नहीं लेनी चाहिए। वही धार्मिक कानून है, एसा मैं तो मानता हूँ।

'हाँ' और 'नहीं' के बीच हमेशा बैर रहता है। अगर मैं वाद-विवाद { बहस } करूँगा, तो मुसलमान भी वाद-विवाद करेगा। अगर मैं टेढ़ा बनूँगा, तो वह भी टेढ़ा बनेगा। अगर मैं बालिश्त भर नमूँगा, तो वह हाथ भर नमेगा; और अगर वह नहीं भी नमे तो मेरा नमना गलत नहीं कहलायेगा। जब हमने जिद की तब गोकुशी बढ़ी। मेरी राय है कि गोरक्षा प्रचारिणी सभा गोवध प्रचारिणी सभा मानी जानी चाहिए। एसी सभा का होना हमारे लिए बदनामी की बात है। जब गाय की रक्षा करना हम भूल गये तब एसी सभा की जरूरत पड़ी होगी।

मेरा भाई गाय को मारने दौड़े, तो मैं उसके साथ कैसा बरताव करूँगा? उसे मारूँगा या उसके पैरों में पड़ूँगा? अगर आप कहें कि मुझे उसके पाँव पड़ना चाहिए, तो मुझे मुसलमान भाई के भी पाँव पड़ना चाहिए।

गाय को दुःख देकर हिंदू गाय का वध करता है; इससे गाय को कौन छुड़ाता है? जो हिंदू गाय की औलाद { बैल को } को पैना (आर) भोंकता है, उस हिंदू को कौन समझाता है? इससे हमारे एक-राष्ट्र होने में कोई रूकावट नहीं आई है।

अंत में, हिंदू अहिंसक और मुसलमान हिंसक है, यह बात अगर सही हो तो अहिंसक का धर्म क्या है? अहिंसक को आदमी की हिंसा करनी चाहिए, एसा कहीं लिखा नहीं है। अहिंसक के लिए तो राह सीधी है। उसे एक को बचाने के लिए दूसरे की हिंसा करनी हीं नहीं चाहिए। उसे तो मात्र चरण-वंदना करनी चाहिए, सिर्फ समझाने का काम करना चाहिए। इसी में उसका पुरूषार्थ { बहादुरी } है।

लेकिन कया तमाम हिंदू अहिंसक हैं? सवाल की जड़ में जाकर विचार करने पर मालूम होता है कि कोई भी अहिंसक नहीं है, क्योंकि जीव को तो हम मारते हीं हैं। लेकिन इस हिंसा से हम छूटना चाहते हैं, इसलिए अहिंसक (कहलाते) हैं। साधारण विचार करने से मालूम होता है कि बहुत से हिंदू माँस खाने वाले हैं, इसलिए वे अहिंसक नहीं माने जा सक़ते। खींच-तानकर दूसरा अर्थ करना हो तो मुझे कुछ कहना नहीं है। जब एसी हालत है तब मुसलमान हिंसक और हिंदू अहिंसक हैं, इसलिए दोनों की नहीं बनेगी, वह सोचना बिलकुल गलत है।

एसे विचार स्वार्थी धर्मशिक्षकों, शास्त्रियों और मुल्लाओं ने हमें दिये हैं। और इसमें जो कमी रह गई थी, उसे अंग्रेज़ों ने पूरा किया है। उन्हें इतिहास लिखने की आदत है; हर एक जाति के रीति-रिवाज जानने का वे दंभ { दिखावा } करते हैं। ईश्वर ने हमारा मन तो छोटा बनाया है, फिर भी वे ईश्वरी दावा करते आये हैं और तरह तरह के प्रयोग { आजमाइश } करते हैं। वे अपने बाजे खुद बजाते हैं और हमारे मन में अपनी बात सही होने का विश्वास जमाते हैं। हम भोलेपन में उस सब पर भरोसा कर लेते हैं।

जो टेढ़ा नहीं देखना चाहते वे देख सकेंगे कि कुरान शरीफ़ में एसे सैकड़ों वचन हैं, जो हिंदुओं को मान्य { मंजूर } हों; भगवद्गीता में एसी बातें लिखी हैं कि जिनके खिलाफ मुसलमान को कोई भी ऐतराज नहीं हो सक़ता। कुरान शरीफ़ का कुछ भाग मैं न समझ पाऊँ या कुछ भाग मुझे पसंद न आये, इस वजह से क्या मैं उसे माननेवाले से नफरत करूँ? झगड़ा दो से हीं हो सक़ता है। मुझे झगड़ा नहीं करना हो, तो मुसलमान क्या करेगा? और मुसलमान को झगड़ा न करना हो, तो मैं क्या कर सक़ता हूँ? हवा में हाथ उठानेवाले का हाथ उखड़ जाता है। सब अपने अपने धर्म का स्वरूप समझकर उससे चिपके रहें और शास्त्रियों व मुल्लाओं को बीच में न आने दें, तो झगड़े का मुँह हमेशा के लिए काला हीं रहेगा।

पाठक: अंग्रेज़ दोनों कौम का मेल होने देंगे?

संपादक: यह सवाल डरपोक आदमी का है। यह सवाल हमारी हीनता को दिखाता है। अगर दो भाई चाहते हों कि उनका आपस में मेल बना रहें, तो कौन उनके बीच में आ सक़ता है? अगर तीसरा आदमी दोनों के बीच झगड़ा पैदा कर सकें, तो उन भाइयों को हम कच्चे दिल के कहेंगे। उसी तरह अगर हम – हिंदू और मुसलमान – कच्चे दिल के होंगे, तो फिर अंग्रेज़ों का कसूर निकालना बेकार होगा। कच्चा घड़ा एक कंकड़ से नहीं तो दूसरे कंकड़ से फूटेगा हीं। घड़े को बचाने का रास्ता यह नहीं है कि उसे कंकड़ से दूर रखा जाय, बल्कि यह है कि उसे पक्का बनाया जाय, जिससे कंकड़ का भय हीं न रहें। उसी तरह हमें पक्के दिल के बनना है। हम दोनों में से कोई एक (भी) पक्के दिल के होंगे, तो तीसरे की कुछ नहीं चलेगी। यह काम हिंदू आसानी से कर सक़ते हैं। उनकी संख्या बड़ी है, वे अपने को ज्यादा पढ़े-लिखे मानते हैं; इसलिए वे पक्का दिल रख सकते हैं।

दोनों कौम के बीच अविश्वास { ना एतबार } है, इसलिए मुसलमान लोर्ड मोर्ले से कुछ हक माँगते हैं। इसमें हिंदू क्यों विरोध करें? अगर हिंदू विरोध न करें, तो अंग्रेज चौकेंगे, मुसलमान धीरे धीरे हिंदुओं का भरोसा करने लगेंगे और दोनों का भाईचारा बढ़ेगा। अपने झगड़े अंग्रेज़ों के पास ले जाने में हमें शरमाना चाहिए। एसा करने से हिंदू कुछ खोनेवाले

नहीं हैं; इसका हिसाब आप खुद लगा सकेंगे। जिस आदमी ने दूसरे पर विश्वास किया, उसने आज तक कुछ खोया नहीं है।

मैं यह नहीं कहना चाहता कि हिंदू-मुसलमान कभी झगड़ेंगे हीं नहीं। दो भाई साथ रहें तो उनके बीच तकरार होती है। कभी हमारे सिर भी फूटेंगे। एसा होना जरूरी नहीं है, लेकिन सब लोग एक सी अकल के नहीं होते। दोनों जोश में आते हैं तब अकसर गलत काम कर बेठते हैं। उन्हें हमें सहन करना होगा। लेकिन एसी तकरार को भी बड़ी वकालत बघारकर हम अंग्रेज़ों की अदालत में न ले जायें। दो आदमी लड़े, लड़ाई में दोनों के सिर या एक का सिर फूटे, तो उसमें तीसरा कया न्याय करेगा? जो लड़ेंगे वे जख्मी भी होंगे। बदन से बदन टकरायेगा तब कुछ निशानी तो रहेंगी हीं। उसमें न्याय कया हो सक़ता है?

११. हिंदुस्तान की दशा – वकील

पाठक: आप कहते हैं कि दो आदमी झगड़ें तब उसका न्याय भी नहीं कराना चाहिए। यह तो आपने अजीब बात कही।

संपादक: इसे अजीब कहिये या दूसरा कोई विशेषण { सिफ़्त } लगाइए, पर बात सही है। आपकी शंका हमें वकील-डॉक्टरों की पहचान कराती है। मेरी राय है कि वकीलों ने हिंदुस्तान को गुलाम बनाया है, हिंदू-मुसलमानों के झगड़े बढ़ाये हैं और अंग्रेज़ी हुकूमत को यहाँ मजबूत किया है।

पाठक: एसे इलजाम लगाना आसान है, लेकिन उन्हें साबित करना मुश्किल होगा। वकीलों के सिवा दूसरा कौन हमें आजादी का मार्ग बताता? उनके सिवा गरीबों का बचाव कौन करता? उनके सिवा कौन हमें न्याय दिलाता? देखिये, स्व मनमोहन घोष ने कितनों को बचाया? खुद एक कौड़ी भी उन्होंने नहीं ली। कांग्रेस, जिसके आपने हीं बखान किये हैं, वकीलों से निभती है और उनकी मेहनत से हीं उसमें काम होते हैं। इस वर्ग { जमात } की आप निंदा करें, यह इन्साफ़ के साथ गैर-इन्साफ़ करने जैसा है। वह तो आपके हाथ में अखबार आया इसलिए चाहे जो बोलने की छूट लेने जैसा लगता है।

संपादक: जैसा आप मानते हैं वैसा हीं मैं भी एक समय मानता था। वकीलों ने कभी कोई अच्छा काम नहीं किया, एसा मैं आपसे नहीं कहना चाहता। मि. मनमोहन घोष की मैं इज्जत करता हूँ। उन्होंने गरीबों की मदद की थी यह बात सही है। कांग्रेस में वकीलों ने कुछ काम किया है, यह भी हम मान सक़ते हैं। वकील भी आखिर मनुष्य है; और मनुष्यजाति में कुछ तो अच्छाई है हीं। वकीलों की भलमनसी के जो बहुत से किस्से देखने में आते हैं, वे तभी हुए जब वे अपने को वकील समझना भूल गये। मुझे तो आपको सिर्फ यही दिखाना है कि उनका धंधा उन्हें अनीति सिखानेवाला है। वे बुरे लालच में फँसते हैं, जिसमें से उबरनेवाले बिरले हीं होते हैं।

हिंदू-मुसलमान आपस में लड़े हैं। तटस्थ { बेतरफ़दार } आदमी उनसे कहेगा कि आप गयी-बीती को भूल जायें; इसमें दोनों का कसूर रहा होगा। अब दोनों मिलकर रहिये। लेकिन वे वकील के पास जाते हैं। वकील का फर्ज हो जाता है कि वह मुवक्किल की ओर

जोर लगाये। मुवक्किल के खयाल में भी न हों एसी दलीलें मुवक्किल की ओर से ढूँढना वकील का काम है। अगर वह एसा नहीं करता तो माना जाएगा कि वह अपने पेशे को बट्टा लगाता है। इसलिए वकील तो आम तौर पर झगड़ा आगे बढ़ाने की हीं सलाह देगा।

लोग दूसरों का दुःख दूर करने के लिए नहीं, बल्कि पैसा पैदा करने के लिए वकील बनते हैं। वह एक कमाई का रास्ता है। इसलिए वकील का स्वार्थ झगड़ा बढ़ाने में है। वह तो मेरी जानी हुई बात है कि जब झगड़े होते हैं तब वकील खुश होते हैं। मुख़तार लोग भी वकील की जात के हैं। जहाँ झगड़े नहीं होते वहाँ भी वे झगड़े खड़े करते हैं। उनके दलाल जोंक की तरह गरीब लोगों से चिपकते हैं और उनका खून चूस लेते हैं। वह पेशा एसा है कि उसमें आदमियों को झगड़े के लिए बढ़ावा मिलता हीं है। वकील लोग निठल्ले होते हैं। आलसी लोग ऐश-आराम करने के लिए वकील बनते हैं। यह सही बात है। वकालत का पेशा बड़ा आबरूदार पेशा है, एसा खोज निकालनेवाले भी वकील हीं हैं। कानून वे बनाते हैं, उसकी तारीफ़ भी वे हीं करते हैं। लोगों से क्या दाम लिये जायें, यह भी वे हीं तय करते हैं; और लोगों पर रोब जमाने के लिए आडंबर { दिखावा } एसा करते हैं, मानों वे आसमान से उतर कर आये हुए देवदूत { फरिश्ते } हों!

वे मजदूर से ज्यादा रोज़ी क्यों माँगते हैं? उनकी जरूरतें मज़दूर से ज्यादा क्यों हैं? उन्होंने मज़दूर से ज्यादा देश का क्या भला किया है? क्या भला करनेवाले को ज्यादा पैसा लेने का हक है? और अगर पैसे के खातिर उन्होंने भला किया हो, तो उसे भला कैसे कहा जाय? यह तो उस पेशे का जो गुण है वह मैंने बताया।

वकीलों के कारण हिंदू-मुसलमानों के बीच कुछ दंगे हुए हैं, यह तो जिन्हें अनुभव है वे जानते होंगे। उनसे कुछ खानदान बरबाद हो गये हैं। उनकी बदौलत भाईयों में जहर दाखिल हो गया है। कुछ रियासतें वकीलों के जाल में फँसकर कर्जदार हो गयी हैं। बहुत से गरासिये { राजवंशी जागीरदार } इन वकीलों की कारस्तानी से लुट गये हैं। एसी बहुत सी मिसालें दी जा सकतीं हैं।

लेकिन वकीलों से बड़े से बड़ा नुकसान तो यह हुआ है कि अंग्रेज़ों का जुआ हमारी गर्दन पर मजबूत जम गया है। आप सोचिये। क्या आप मानते हैं कि अंग्रेज़ी अदालते यहाँ

न होतीं तो वे हमारे देश में राज कर सक़ते थे? ये अदालते लोगों के भले के लिए नहीं हैं। जिन्हें अपनी सत्ता कायम रखनी है, वे अदालतों के जरिये लोगों को बस में रखते हैं। लोग अगर खुद अपने झगड़े निबटा लें, तो तीसरा आदमी उन पर अपनी सत्ता नहीं जमा सक़ता। सचमुच जब लोग खुद मार-पीट करके या रिश्तेदारों को पंच बनाकर अपना झगड़ा निबटा लेते थे तब वे बहादुर थे। अदालते आयीं और वे कायर बन गये। लोग आपस में लड़ कर झगड़े मिटायें, यह जंगली माना जाता था। अब तीसरा आदमी झगड़ा मिटाता है, यह क्या कम जंगलीपन है? क्या कोई एसा कह सकेगा कि तीसरा आदमी जो फैसला देता है वह सही फैसला हीं होता है? कोन सच्चा है, यह दोनों पक्ष के लोग जानते हैं। हम भोलेपन में मान लेते हैं कि तीसरा आदमी हमसे पैसे लेकर हमारा इन्साफ़ करता है।

इस बात को अलग रखें। हकीकत तो यही दिखानी है कि अंग्रेजों ने अदालतों के जरिये हम पर अंकुश जमाया है और अगर हम वकील न बनें तो ये अदालते चल हीं नहीं सकतीं। अगर अंग्रेज़ हीं जज होते, अंग्रेज़ हीं वकील होते और अंग्रेज़ हीं सिपाही होते, तो वे सिर्फ अंग्रेज़ों पर हीं राज करते। हिंदुस्तानी जज और हिंदुस्तानी वकील के बगैर उनका काम चल नहीं सका। वकील कैसे पैदा हुए, उन्होंने कैसी धांधल मचाई, यह सब अगर आप समझ सकें, तो मेरे जितनी हीं नफ़रत आपको भी इस पेशे के लिए होगी। अंग्रेज़ी सत्ता की एक मुख्य { बड़ी } कुंजी उनकी अदालते हैं और अदालतों की कुंजी वकील हैं। अगर वकील वकालत करना छोड़ दें और वह पेशा वेश्या के पेशे जैसा नीच माना जाय, तो अंग्रेज़ी राज एक दिन में टूट जाय। वकीलों ने हिंदुस्तानी प्रजा पर यह तोहमत लगवाई है कि हमें झगड़े प्यारे हैं और हम कोर्ट-कचहरी रूपी पानी की मछलियाँ हैं।

जो शब्द मैं वकीलों के लिए इस्तेमाल करता हूँ, वे हीं शब्द जजों को भी लागू होते हैं। ये दोनों मौसेरे भाई हैं और एक-दूसरे को बल देनेवाले हैं।

१२. हिंदुस्तान की दशा- डॉक्टर

पाठक: वकीलों की बात तो हम समझ सकते हैं। उन्होंने जो अच्छा काम किया है वह जान-बूझकर नहीं किया, एसा यकीन होता है। बाकी उनके धंधे को देखा जाय तो वह कनिष्ठ { बहुत हलका } हीं है। लेकिन आप तो डॉक्टरों को भी उनके साथ घसीटते हैं। यह केसे?

संपादक: मैं जो विचार आपके सामने रखता हूँ, वे इस समय तो मेरे अपने हीं हैं। लेकिन एसे विचार मैंने हीं किये हैं सो बात नहीं। पश्चिम के सुधारक खुद मुझसे ज्यादा सख्त शब्दों में इन धंधों के बारे में लिख गये हैं। उन्होंने वकीलों और डॉक्टरों की बहुत निंदा की है। उनमें से एक लेखक ने एक जहरी पेड़ का चित्र खींचा है, वकील-डॉक्टर वगैरा निकम्मे धंधेवालों को उसकी शाखाओं के रूप में बताया है और उस पेड़ के तने पर नीति-धर्म की कुल्हाड़ी उठाई है। अनीति को इन सब धंधों की जड़ बताया है। इससे आप यह समझ लेंगे कि मैं आपके सामने अपने दिमाग से निकाले हुए नये विचार नहीं रखता, लेकिन दूसरों का और अपना अनुभव आपके सामने रखता हूँ।

डॉक्टरों के बारे में जैसे आपको अभी मोह है वैसे कभी मुझे भी था। एक समय एसा था जब मैंने खुद डॉक्टर होने का इरादा किया था और सोचा था कि डॉक्टर बनकर कौम की सेवा करूँगा। मेरा यह मोह अब मिट गया है। हमारे समाज में वैद्य का धंधा कभी अच्छा माना हीं नहीं गया, इसका भान अब मुझे हुआ है; और उस विचार की कीमत मैं समझ सक़ता हूँ।

अंग्रेजों ने डॉक्टरी विद्या से भी हम पर काबू जमाया है। डॉक्टरों में दंभ की भी कमी नहीं है। मुगल बादशाह को भरमानेवाला एक अंग्रेज़ डॉक्टर हीं था। उसने बादशाह के घर में कुछ बीमारी मिटाई, इसलिए उसे सिरोपाव मिला। अमीरों के पास पहुँचनेवाले भी डॉक्टर हीं हैं।

डॉक्टरों ने हमें जड़ से हिला दिया है। डॉक्टरों से नीम-हकीम ज्यादा अच्छे, एसा कहने का मेरा मन होता है। इस पर हम कुछ विचार करें।

डॉक्टरों का काम सिर्फ शरीर को संभालने का है; या शरीर को संभालने का भी नहीं है। उनका काम शरीर में जो रोग पैदा होते हैं उन्हें दूर करने का है। रोग क्यों होते हैं? हमारी हीं गफ़लत से। मैं बहुत खाऊँ और मुझे बदहजमी, अजीरन हो जाय; फिर मैं डॉक्टर के पास जाँऊ और वह मुझे गोली दे; गोली खाकर मैं चंगा हो जाँऊ और दुबारा खूब खाऊँ और फिर से गोली लूँ। अगर मैं गोली न लेता तो अजीरन की सजा भुगतता और फिर से बेहद नहीं खाता। डॉक्टर बीच में आया और उसने हदसे ज्यादा खाने में मेरी मदद की। उससे मेरे शरीर को तो आराम हुआ, लेकिन मेरा मन कमज़ोर बना। इस तरह आखिर मेरी यह हालत होगी कि मैं अपने मन पर जरा भी काबू न रख सकूंगा।

मैंने विलास किया, मैं बीमार पड़ा; डॉक्टर ने मुझे दवा दी और मैं चँगा हुआ। क्या मैं फिर से विलास नहीं करूँगा? जरूर करूँगा। अगर डॉक्टर बीच में न आता तो कुदरत अपना काम करती, मेरा मन मजबूत बनता और अन्त में निर्विषयी { बे-नन्स-परस्त } होकर मैं सुखी होता।

अस्पतालें पाप की जड़ हैं। उनकी बदौलत लोग शरीर का जतन कम करते हैं और अनीति को बढ़ाते हैं।

यूरोप के डॉक्टर तो हद करते हैं। वे सिर्फ शरीर के हीं गलत जतन के लिए लाखों जीवों को हर साल मारते हैं, जिंदा जीवों पर प्रयोग करते हैं। एसा करना किसी भी धर्म को मंजूर नहीं। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जरथोस्ती – सब धर्म कहते हैं कि आदमी के शरीर के लिए इतने जीवों को मारने की जरूरत नहीं।

डॉक्टर हमें धर्मभ्रष्ट { बेदीन } करते हैं। उनकी बहुत सी दवाओं में चरबी या दारू होती है। इन दोनों में से एक भी चीज हिंदू-मुसलमान को चल सके एसी नहीं है। हम सभ्य होने का ढोंग करके, दूसरों को वहमी मानकर और बे-लगाम { स्वच्छन्द } होकर चाहे सो करते रहें; यह दूसरी बात है। लेकिन डॉक्टर हमें धर्म से भ्रष्ट करते हैं, यह साफ और सीधी बात है।

इसका परिणाम { नतीजा } यह आता है कि हम निःसत्व { जिसमें कुछ दम न हो } और नामर्द बनते हैं। एसी दशा में हम लोकसेवा करने लायक नहीं रहते और शरीर से

क्षीण { कमज़ोर } और बुद्धिहीन { बे-अक़ल } होते जा रहें हैं। अंग्रेज़ी या यूरोपियन डॉक्टरी सीखना गुलामी की गाँठ को मजबूत बनाने जैसा है।

हम डॉक्टर क्यों बनते हैं, यह भी सोचने की बात है। उसका सच्चा कारण तो आबरूदार और पैसा कमाने का धंधा करने की इच्छा है। उसमें परोपकार की बात नहीं है। उस धन्धे में परोपकार नहीं है, यह तो मैं बता चुका। उससे लोगों को नुकसान होता है। डॉक्टर सिर्फ आडम्बर दिखाकर हीं लोगों से बड़ी फीस वसूल करते हैं और अपनी एक पैसे की दवा के कई रूपये लेते हैं। यों विश्वास में और चंगे हो जाने की आशा में लोग डॉक्टरों से ठगे जाते हैं। जब एसा हीं है तब भलाई का दिखावा करनेवाले डॉक्टरों से खुले ठग-वैद्य (नीम-हकीम) ज्यादा अच्छे।

१३. सच्ची सभ्यता कौन सी?

पाठक: आपने रेल को रद कर दिया, वकीलों की निन्दा की, डॉक्टरों को दबा दिया। तमाम कल-काम { यंत्रकाम } को भी आप नुकसानदेह मानेंगे, एसा मैं देख सक़ता हूँ। तब सभ्यता { तहजीब } कहें तो किसे कहें?

संपादक: इस सवाल का जवाब मुश्किल नहीं है। मैं मानता हूँ कि जो सभ्यता हिंदुस्तान ने दिखायी है, उसको दुनिया में कोई नहीं पहुँच सक़ता। जो बीज हमारे पुरखों ने बोए हैं, उनकी बराबरी कर सके एसी कोई चीज देखने में नहीं आयी। रोम मिट्टी में मिल गया, ग्रीस का सिर्फ नाम हीं रह गया, मिस्र की बादशाही चली गई, जापान पश्चिम के शिकंजे में फँस गया और चीन का कुछ भी कहा नहीं जा सक़ता। लेकिन गिरा-टूटा जैसा भी हो, हिंदुस्तान आज भी अपनी बुनियाद में मजबूत है।

जो रोम और ग्रीस गिर चुके हैं, उनकी किताबों से यूरोप के लोग सीखते हैं। उनकी गलतियाँ वे नहीं करेंगे एसा गुमान { अभिमान } रखते हैं। एसी उनकी कंगाल हालत है, जब कि हिंदुस्तान अचल है, अडिग है। यही उसका भूषण है। हिंदुस्तान पर आरोप लगाया जाता है कि वह एसा जंगली, एसा अज्ञान है कि उससे जीवन में कुछ फेरबदल कराये हीं नहीं जा सक़ते। यह आरोप हमारा गुण { सिफ़त } है, दोष { नुक़्स } नहीं। अनुभव { तजरबा } से जो हमें ठीक लगा है, उसे हम क्यों बदलेंगे? बहुत से अकल देनेवाले आते-जाते रहते हैं, पर हिंदुस्तान अडिग रहता है। यह उसकी खूबी है, यह उसका लंगर है।

सभ्यता वह आचरण { बरताव } है जिससे आदमी अपना फर्ज अदा करता हैं। फर्ज अदा करने के मानी है नीति का पालन करना। नीति के पालन का मतलब है अपने मन और इन्द्रियों को बस में रखना। एसा करते हुए हम अपने को (अपनी असलियत को) पहचानते हैं। यही सभ्यता है। इससे जो उलटा है वह बिगाड़ करनेवाला है।

बहुत से अंग्रेज लेखक लिख गये हैं कि ऊपर की व्याख्या { तशरीह } के मुताबिक हिंदुस्तान को कुछ भी सीखना बाकी नहीं रहता।

यह बात ठीक है। हमने देखा कि मनुष्य की वृत्तियाँ { भावनाएं – जज्बे } चंचल हैं। उसका मन बेकार की दौड़धूप किया करता है। उसका शरीर जैसे-जैसे ज्यादा दिया जाय वैसे-वैसे ज़्यादा माँगता है। ज्यादा लेकर भी वह सुखी नहीं होता। भोग भोगने से भोग की इच्छा बढ़ती जाती है। इसलिए हमारे पुरखों ने भोग की हद बाँध दी। बहुत सोचकर उन्होंने देखा कि सुख-दुःख तो मन के कारण हैं। अमीर अपनी अमीरी की वजह से सुखी नहीं है, गरीब अपनी गरीबी के कारण दुःखी नहीं है। अमीर दुःखी देखने में आता है और गरीब सुखी देखने में आता है। करोड़ों लोग तो गरीब हीं रहेंगे। एसा देखकर उन्होंने भोग की वासना
{ ख्वाहिश } छुड़वाई। हजारों साल पहले जो हल काम में लिया जाता था, उससे हमने काम चलाया। हजारों साल पहले जैसे झोंपड़े थे, उन्हें हमने कायम रखा। हजारों साल पहले जैसी हमारी शिक्षा { तालीम } थी वही चलती आई। हमने नाशकारक होड़ को समाज में जगह नहीं दी; सब अपना अपना धंधा करते रहें। उसमें उन्होंने दस्तूर के मुताबिक दाम लिए। एसा नहीं था कि हमें यंत्र वगैरा की खोज करना हीं नहीं आता था। लेकिन हमारे पूर्वजों ने देखा कि लोग अगर यंत्र वगैरा की झंझट में पड़ेंगे, तो गुलाम हीं बनेंगे और अपनी नीति को छोड़ देंगे। उन्होंने सोच-समझकर कहा कि हमें अपने हाथ-पैरों से जो काम हो सके वही करना चाहिए। हाथ-पैरों का इस्तेमाल करने में हीं सच्चा सुख है, उसीमें तंदुरूस्ती है।

उन्होंने सोचा कि बढ़े शहर खड़े करना बेकार की झंझट है। उनमें लोग सुखी नहीं होंगे। उनमें धूर्तों { ठगों } की टोलियाँ और वेश्याओं { बेसवाओं } की गलियाँ पैदा होंगी; गरीब अमीरों से लूटे जायेंगे। इसलिए उन्होंने छोटे देहातों से संतोष माना।

उन्होंने देखा कि राजाओं और उनकी तलवार के बनिस्बत नीति का बल ज्यादा बलवान है। इसलिए उन्होंने राजाओं को नीतिवान पुरूषों – ऋषियों और फकीरों—से कम दर्जे का माना।

एसी जिस राष्ट्र की गठन है वह राष्ट्र दूसरों को सिखाने लायक है; वह दूसरों से सीखने लायक नहीं है।

इस राष्ट्र में अदालते थीं, वकील थे, डॉक्टर-वैद्य थे। लेकिन वे सब ठीक ढंग से नियम के मुताबिक चलते थे। सब जानते थे कि ये धन्धे बड़े नहीं हैं। और वकील, डॉक्टर वगैरा लोगों में लूट नहीं चलाते थे; वे तो लोगों के आश्रित { पनाहगीर } थे। वे लोगों के मालिक बनकर नहीं रहते थे। इन्साफ़ काफी अच्छा होता था। अदालतों में न जाना, यह लोगों का ध्येय { मक़सद } था। उन्हें भरमानेवाले स्वार्थी लोग नहीं थे। इतनी सड़न भी सिर्फ राजा और राजधानी के आसपास हीं थी। यों (आम) प्रजा तो उससे स्वतंत्र रहकर अपने खेत का मालिकी हक भोगती थी। उसके पास सच्चा स्वराज्य था।

और जहाँ यह चांडाल { शैतानी } सभ्यता नहीं पहुँची है, वहाँ हिंदुस्तान आज भी वैसा हीं है। उसके सामने आप अपने नये ढोंगों की बात करेंगे, तो वह आपकी हँसी उड़ाएगा। उस पर न तो अंग्रेज़ राज करते हैं, न आप कर सकेंगे। जिन लोगों के नाम पर हम बात करते हैं, उन्हें हम पहचानते नहीं हैं, न वे हमें पहचानते हैं। आपको और दूसरों को, जिनमें देशप्रेम है, मेरी सलाह है कि आप देश में—जहाँ रेल की बाढ़ नहीं फैली है उस भाग में – छह माह के लिए घूम आयें और बाद में देश की लगन लगाये, बाद में स्वराज्य की बात करें।

अब आपने देखा कि सच्ची सभ्यता मैं किस चीज को कहता हूँ। ऊपर मैंने जो तसवीर खींची है वैसा हिंदुस्तान जहाँ हो वहाँ जो आदमी फेरफार करेगा उसे आप दुश्मन समझिये। वह मनुष्य पापी है।

पाठक: आपने जैसा बताया वैसा हीं हिंदुस्तान होता तब तो ठीक था। लेकिन जिस देश में हजारों बाल-विधवायें हैं, जिस देश में दो बरस की बच्ची की शादी हो जाती है, जिस देश में बारह साल की उम्र के लड़के-लड़कियों घर-संसार चलाते हैं, जिस देश में स्त्री एक से ज्यादा पति करती है, जिस देश में नियोग[१] की प्रथा है, जिस देश में धर्म के नाम पर कुमारिकाएँ बेसवाएँ { देवदासियां } बनती हैं, जिस देश में धर्म के नाम पर पाड़ों और बकरों की हत्या { कत्ल } होती है, वह देश भी हिंदुस्तान हीं है। एसा होने पर भी आपने जो बताया वह क्या सभ्यता का लक्षण { निशानी } है?

संपादक: आप भूलते हैं। आपने जो दोष बताये वे तो सचमुच दोष हीं हैं। उन्हें कोई सभ्यता नहीं कहता। वे दोष सभ्यता के बावजूद कायम रहें हैं। उन्हें दूर करने के प्रयत्न हमेशा हुए हैं, और होते हीं रहेंगे। हममें जो नया जोश पैदा हुआ है, उसका उपयोग हम इन दोषों को दूर करने में कर सकते हैं।

मैंने आपको आज की सभ्यता की जो निशानी बताई, उसे इस सभ्यता के हिमायती खुद बताते हैं। मैंने हिंदुस्तान की सभ्यता का जो वर्णन किया, वह वर्णन { बयान } नई सभ्यता के हिमायतियों ने किया है।

किसी भी देश में किसी भी सभ्यता के मातहत सभी लोग संपूर्णता तक नहीं पहुँच पाये हैं। हिंदुस्तान की सभ्यता का झुकाव नीति को मजबूत करने की ओर है; पश्चिम की सभ्यता का झुकाव अनीति को मजबूत करने की ओर है। इसलिए मैंने उसे हानिकारक कहा है। पश्चिम की सभ्यता निरीश्वरवादी { खुदा में नहीं माननेवाली } है, हिंदुस्तान की सभ्यता ईश्वर में माननेवाली है।

यों समझकर, एसी श्रद्धा रखकर, हिंदुस्तान के हितचिंतकों को चाहिए कि वे हिंदुस्तान की सभ्यता से, बच्चा जैसे माँसे चिपटा रहता है वैसे, चिपट रहें।

---

१. एक पुराना रिवाज जिसके मुताबिक बिना संतानवाली स्त्री पति के रोगी, नपुंसक या मृत होने की हालत में अपने देवर या पति के किसी और संबंधी से संतान पैदा करा सकती थी।

१४. हिंदुस्तान कैसे आजाद हो?

पाठक: सभ्यता के बारे में आपके विचार मैं समझ गया। आपने जो कहा उस पर मुझे ध्यान देना होगा। तुरन्त सब कुछ मंजूर कर लिया जाय, एसा आप नहीं मानते होंगे; एसी आशा भी नहीं रखते होंगे। आपके एसे विचारों के अनुसार आप हिंदुस्तान के आजाद होने का कया उपाय बतायेंगे?

संपादक: मेरे विचार सब लोग तुरन्त मान लें, एसी आशा मैं नहीं रखता। मेरा फर्ज इतना हीं है कि आपके जैसे जो लोग मेरे विचार जानना चाहते हैं, उनके सामने अपने विचार रख दूँ। वे विचार उन्हें पसंद आयेंगे या नहीं आयेंगे, यह तो समय बीतने पर हीं मालूम होगा।

हिंदुस्तान की आजादी के उपायों का हम विचार कर चुके। फिर भी हमने दूसरे रूप में उन पर विचार किया। अब हम उन पर उनके स्वरूप में विचार करें।

जिस कारण से रोगी बीमार हुआ हो वह कारण अगर दूर कर दिया जाय, तो रोगी अच्छा हो जाएगा यह जग मशहूर बात है। इसी तरह जिस कारण से हिंदुस्तान गुलाम बना वह कारण अगर दूर कर दिया जाय, ततो वह बंधन से मुक्त { आजाद } हो जाएगा।

पाठक: आपकी मान्यता के मुताबिक हिंदुस्तान की सभ्यता अगर सबसे अच्छी है, तो फिर वह गुलाम क्यों बना?

संपादक: सभ्यता तो मैंने कही वैसी हीं है, लेकिन देखने में आया है कि हर सभ्यता पर आफतें आती हैं। जो सभ्यता अचल है वह आखिरकार आफतों को दूर कर देती है। हिंदुस्तान के बालकों में कोई न कोई कमी थी, इसीलिए वह सभ्यता आफतों से घिर गई। लेकिन इस घेरे में से छूटने की ताक़त उसमें है, यह उसके गौरव { बड़ाई } को दिखाता है।

और फिर सारा हिंदुस्तान उसमें (गुलामी में) घिरा हुआ नहीं है। जिन्होंने पश्चिम की शिक्षा पाई है और जो उसके पाश { फंदे } में फँस गये हैं, वे हीं गुलामी में घिरे हुए हैं। हम जगत को अपनी दमड़ी के नाप से नापते हैं। अगर हम गुलाम हैं, तो जगत को भी गुलाम मान लेते हैं। हम कंगाल दशा में हैं, इसलिए मान लेते हैं कि सारा हिंदुस्तान एसी दशा में

है। दरअसल एसा कुछ नहीं है। फिर भी हमारी गुलामी सारे देश की गुलामी है, एसा मानना ठीक है। लेकिन ऊपर की बात हम ध्यान में रखें तो समझ सकेंगे कि हमारी अपनी गुलामी मिट जाय, तो हिंदुस्तान की गुलामी मिट गई एसा मान लेना चाहिए। इसमें अब आपको स्वराज्य की व्याख्या { तशरीह } भी मिल जाती है। हम अपने ऊपर राज करें वही स्वराज्य है; और वह स्वराज्य हमारी हथेली में है।

इस स्वराज्य को आप सपने जैसा न माने। मन से मान कर बैठे रहनें का भी यह स्वराज्य नहीं है। यह तो एसा स्वराज्य है कि आपने अगर इसका स्वाद चख लिया हो, तो दूसरों को इसका स्वाद चखाने के लिए आप जिन्दगी भर कोशिश करेंगे। लेकिन मुख्य { खास या अहम् } बात तो हर शख्स के स्वराज्य भोगने की है। डूबता आदमी दूसरे को नहीं तारेगा, लेकिन तैरता आदमी दूसरे को तारेगा। हम खुद गुलाम होंगे और दूसरों को आजाद करने की बात करेंगे, तो वह संभव नहीं है।

लेकिन इतना काफी नहीं है। हमें और भी आगे सोचना होगा।

अब इतना तो आपकी समझ में आया होगा कि अंग्रेज़ों को देश से निकालने का मक़सद सामने रखने की जरूरत नहीं है। अगर अंग्रेज़ हिंदुस्तानी बनकर रहें तो हम उनका समावेश यहाँ कर सकते हैं। अंग्रेज अगर अपनी सभ्यता के साथ रहना चाहें, तो उनके लिए हिंदुस्तान में जगह नहीं है। एसी हालत पैदा करना हमारे हाथ में है।

पाठक: अंग्रेज़ हिंदुस्तानी बनें, यह नामुमकिन है।

संपादक: हमारा एसा कहना यह कहने के बराबर है कि अंग्रेज मनुष्य नहीं हैं। वे हमारे जैसे बनें या न बनें, इसकी हमें परवाह नहीं है। हम अपना घर साफ करें। फिर रहने लायक लोग हीं उसमें रहेंगे; दूसरे अपने-आप चले जायेंगे। एसा अनुभव तो हर आदमी को हुआ होगा।

पाठक: एसा होने की बात तवारीख़ { इतिहास } में तो हमने नहीं पढ़ी।

संपादक: जो चीज तवारीख़ में नहीं देखी वह कभी नहीं होगी, एसा मानना मनुष्य की प्रतिष्ठा में अविश्वास करना है। जो बात हमारी अकल में आ सके, उसे आखिर हमें आजमाना तो चाहिए हीं।

हर देश की हालत एक सी नहीं होती। हिंदुस्तान की हालत विचित्र है। हिंदुस्तान का बल असाधारण है। इसलिए दूसरी तवारीख़ों से हमारा कम संबंध है। मैंने आपको बताया कि दूसरी सभ्यतायें मिट्टी में मिल गयीं, जब कि हिंदुस्तानी सभ्यता को आँच नहीं आयी है।

पाठक: मुझे ये सब बातें ठीक नहीं लगतीं। हमें लड़कर अंग्रेज़ों को निकालना हीं होगा, इसमें कोई शक नहीं। जब तक वे हमारे मुल्क में हैं, तब तक हमें चैन नहीं पड़ सक़ता। 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' एसा देखने में आता है। अंग्रेज़ यहाँ हैं इसलिए हम कमज़ोर होते जा रहें हैं। हमारा तेज चला गया है और हमारे लोग घबराये-से दीखते हैं। अंग्रेज हमारे देश के लिए यम (काल) जैसे हैं। उस यम को हमें किसी भी प्रयत्न से भगाना होगा।

संपादक: आप अपने आवेश { जोश } में मेरा सारा कहना भूल गये हैं। अंग्रेज़ों को यहाँ लानेवाले हम हैं और वे हमारी बदौलत हीं यहाँ रहते हैं। आप यह कैसे भूल जाते हैं कि हमने उनकी सभ्यता अपनायी है, इसलिए वे यहाँ रह सक़ते हैं? आप उनसे जो नफ़रत करते हैं वह नफ़रत आपको उनकी सभ्यता से करनी चाहिए। फिर भी मान लें कि हम लड़कर उन्हें निकालना चाहते हैं। यह कैसे हो सकेगा?

पाठक: इटली ने किया वैसे। मैज़िनी और गेरीबाल्डी ने जो किया, वह तो हम भी कर सक़ते हैं। वे महावीर थे, इस बात से क्या आप इनकार कर सकेंगे?

१५. इटली और हिंदुस्तान

संपादक: आपने इटली का उदाहरण { मिसाल } ठीक दिया। मैज़िनी महात्मा था। गैरीबाल्डी बड़ा योद्धा { लड़वैया } था। दोनों पूजनीय थे। उनसे हम बहुत सीख सक़ते हैं। फिर भी इटली की दशा और हिंदुस्तान की दशा में फरक है।

पहले तो मैज़िनी और गैरीबाल्डी के बीच का भेद जानने लायक है। मैज़िनी के अरमान अलग थे। मैज़िनी जैसा सोचता था वैसा इटली में नहीं हुआ। मैज़िनी ने मनुष्य-जाति के कर्तव्य के बारे में लिखते हुए यह बताया है कि हर एक को स्वराज्य भोगना सीख लेना चाहिए। यह बात उसके लिए सपने जैसी रही। गैरीबाल्डी और मैज़िनी के बीच मतभेद { अलग राय } हो गया था, यह हमें याद रखना चाहिए। इसके सिवा, गैरीबाल्डी ने हर इटालियन के हाथ में हथियार दिये और हर इटालियन ने हथियार लिये।

इटली और आस्ट्रिया के बीच सभ्यता का भेद नहीं था। वे तो 'चचेरे भाई' माने जायेंगे। 'जैसे को तैसा' वाली बात इटली की थी। इटली को परदेशी (आस्ट्रिया के) जूए से छुड़ाने का मोह गैरीबाल्डी को था। इसके लिए उसने कावूर के मारफ़त जो साज़िशें { षड्यंत्र } कीं, वे उसकी शूरता को बट्टा लगानेवाली हैं।

और अन्त में नतीजा क्या निकला? इटली में इटालियन राज करते हैं इसलिए इटली की प्रजा सुखी है, एसा आप मानते हों तो मैं आपसे कहूँगा कि आप अंधेरे में भटकते हैं। मैज़िनी ने साफ साफ बताया है कि इटली आजाद नहीं हुआ है। विक्टर इमेन्युअल ने इटली का एक अर्थ किया, मैज़िनी ने दूसरा। इमेन्युअल, कावूर और गैरीबाल्डी के विचार से इटली का अर्थ था इमेन्युअल या इटली का राजा और उसके हुजूरी। मैज़िनी के विचार से इटली का अर्थ था इटली के लोग—उसके किसान। इमेन्युअल वगैरा तो उनके (प्रजा के) नौकर थे। मैज़िनी का इटली अब भी गुलाम है। दो राजाओं के बीच शतरंज की बाज़ी लगी थी; इटली की प्रजा तो सिर्फ प्यादा थी और है। इटली के मजदूर अब भी दुःखी हैं। इटली के मजदूरों की दाद-फ़रियाद नहीं सुनी जाती, इसलिए वे लोग खून करते हैं, विरोध करते हैं, सिर फोड़ते हैं और वहाँ बलवा होने का डर आज भी बना हुआ है। आस्ट्रिया के जाने से

इटली को क्या लाभ हुआ? नाम का हीं लाभ हुआ। जिन सुधारों के लिए जंग मचा वे सुधार हुए नहीं, प्रजा की हालत सुधरी नहीं।

हिंदुस्तान की एसी दशा करने का तो आपका इरादा नहीं हीं होगा। मैं मानता हूँ कि आपका विचार हिंदुस्तान के करोड़ों लोगों को सुखी करने का होगा, यह नहीं कि आप या मैं राजसत्ता ले लूँ। अगर एसा है तो हमें एक हीं विचार करना चाहिए। वह यह कि प्रजा स्वतन्त्र { आजाद } कैसे हो।

आप कबूल करेंगे कि कुछ देशी रियासतों में प्रजा कुचली जाती है। वहाँ के शासक नीचता से लोगों को कुचलते हैं। उनका जुल्म अंग्रेज़ों के जुल्म से भी ज्यादा है। एसा जुल्म अगर आप हिंदुस्तान में चाहते हों, तो हमारी पटरी कभी नहीं बैठेगी।

मेरा स्वदेशाभिमान { हुब्बेवतन } मुझे यह नहीं सिखाता कि देशी राजाओं के मातहत जिस तरह प्रजा कुचली जाती है उसी तरह उसे कुचलने दिया जाय। मुझमें बल होगा तो मैं देशी राजाओं के जुल्म के खिलाफ और अंग्रेज़ी जुल्म के खिलाफ जूझूँगा।

स्वदेशाभिमान का अर्थ मैं देश का हित { भला } समझता हूँ। अगर देश का हित अंग्रेज़ों के हाथों होता हो, तो मैं आज अंग्रेज़ों को झुक कर नमस्कार करूँगा। अगर कोई अंग्रेज़ कहे कि देश को आजाद करना चाहिए, जुल्म के खिलाफ होना चाहिए और लोगों की सेवा करनी चाहिए, तो उस अंग्रेज को मैं हिंदुस्तानी मान कर उसका स्वागत करूँगा।

फिर, इटली की तरह जब हिंदुस्तान को हथियार मिलें तभी वह लड़ सक़ता है; पर इस भगीरथ (बहुत बड़े) काम का तो, मालूम होता है, आपने विचार हीं नहीं किया है। अंग्रेज़ गोला-बारूद से पूरी तरह लैस हैं, इससे मुझे डर नहीं लगता। लेकिन एसा तो दीखता है कि उनके हथियारों से उन्हीं के खिलाफ लड़ना हो, तो हिंदुस्तान को हथियारबंद करना होगा। अगर एसा हो सक़ता हो, तो इसमें कितने साल लगेंगे? और तमाम हिंदुस्तानियों को हथियारबंद करना तो हिंदुस्तान को यूरोप-सा बनाने जैसा होगा। अगर एसा हुआ तो आज यूरोप के जो बेहाल है वैसे हीं हिंदुस्तान के भी होंगे। थोड़े में, हिंदुस्तान को यूरोप की सभ्यता अपनानी होगी। एसा हीं होनेवाला हो तो अच्छी बात यह होगी कि जो अंग्रेज उस सभ्यता में कुशल हैं, उन्हीं को हम यहाँ रहनें दें। उनसे थोड़ा-बहुत झगड़ कर कुछ हक हम पायेंगे, कुछ नहीं पायेंगे और अपने दिन गुजारेंगे।

लेकिन बात तो यह है कि हिंदुस्तान की प्रजा कभी हथियार नहीं उठायेगी। न उठाये यह ठीक हीं है।

पाठक: आप तो बहुत आगे बढ़ गये। सबके हथियारबंद होने की जरूरत नहीं। हम पहले तो कुछ अंग्रेज़ों का खून करके आतंक { दहशत, त्रास } फैलायेंगे। फिर तो थोड़े लोग हथियारबंद होंगे, वे खुल्लमखुल्ला लड़ेंगे। उसमें पहले तो वीस-पचीस लाख हिंदुस्तानी जरूर मरेंगे। लेकिन आखिर हम देश को अंग्रेज़ों से जीत लेंगे। हम गुरीला (डाकुओं जैसी) लड़ाई लड़कर अंग्रेज़ों को हरा देंगे।

संपादकः आपका खयाल हिंदुस्तान की पवित्र भूमि को राक्षसी { शैतानी } बनाने का लगता है। अंग्रेज़ों का खून करके हिंदुस्तान को छूड़ायेंगे, एसा विचार करते हुए आपको त्रास क्यों नहीं होता? खून तो हमें अपना करना चाहिए; क्योंकि हम नामर्द बन गये हैं, इसीलिए हम खून का विचार करते हैं। एसा करके आप किसे आजाद करेंगे? हिंदुस्तान की प्रजा एसा कभी नहीं चाहती। हम जैसे लोग हीं, जिन्होंने अधम सभ्यतारूपी भांग पी है, नशे में एसा विचार करते हैं। खून करके जो लोग राज करेंगे, वे प्रजा को सुखी नहीं बना सकेंगे। धींगरा[१] ने जो खून किया है उससे या जो खून हिंदुस्तान में हुए हैं उनसे देश को फायदा हुआ है, एसा अगर कोई मानता हो तो यह बड़ी भूल करता है। धींगरा को मैं देशाभिमानी मानता हूँ, लेकिन उसका देशप्रेम पागलपन से भरा था। उसने अपने शरीर का बलिदान गलत तरीके से दिया। उससे अंत में तो देश को नुकसान हीं होनेवाला है।

पाठक: लेकिन आपको इतना तो कबूल करना हीं होगा कि अंग्रेज़ इस खून से डर गये हैं, और लोर्ड मोर्ले ने जो कुछ हमें दिया है वह एसे डर से हीं दिया है।

संपादक: अंग्रेज़ जैसे डरपोक प्रजा हैं वैसे बहादुर भी हैं। गोलाबारूद का असर उन पर तुरन्त होता है, एसा मैं मानता हूँ। संभव है, लोर्ड मोर्ले ने हमें जो कुछ दिया वह डर से दिया हो। लेकिन डर से मिली हुई चीज जब तक डर बना रहता है तभी तक टिक सकतीं है।

---

१. पंजाबी युवक मदनलाल धींगरा ने जुलाई, १९०९ में लंदन में कर्नल सर कर्जन बाइली को गोली का निशाना बनाया था, उसे फांसी की सजा मिली थी।

१६. गोला-बारूद

पाठक: डर से दिया हुआ जब तक डर रहें तभी तक टिक सकता है, यह तो आपने विचित्र बात कही। जो दिया सो दिया। उसमें फिर क्या हेरफेर हो सक़ता है?

संपादक: एसा नहीं है। १८५७ की घोषणा बलवे के अंत में लोगों में शान्ति कायम रखने के लिए की गई थी। जब शान्ति हो गई और लोग भोले दिल के बन गये तब उसका अर्थ बदल गया। अगर मैं सजा के डर से चोरी न करूँ, तो सजा का डर मिट जाने पर चोरी करने की मेरी फिर से इच्छा होगी और मैं चोरी करूँगा। यह तो बहुत हीं साधारण अनुभव { तजरबा } है; इससे इनकार नहीं किया जा सक़ता। हमने मान लिया है कि डाँट-डपटकर लोगों से काम लिया जा सक़ता है और इसलिए हम एसा करते आये हैं।

पाठक: आपकी यह बात आपके खिलाफ जाती है, एसा आपको नहीं लगता? आपको स्वीकार करना होगा कि अंग्रेज़ों ने खुद जो कुछ हासिल किया है, वह मार-काट करके हीं हासिल किया है। आप कह चुके हैं कि (मार-काट से) उन्होंने जो कुछ हासिल किया है वह बेकार है; यह मुझे याद है। इससे मेरी दलील को धक्का नहीं पहुँचता। उन्होंने बेकार (चीज) पाने का सोचा और उसे पाया। मतलब यह कि उन्होंने अपनी मुराद पूरी की। साधन { जरिया } क्या था, इसकी चिन्ता हम क्यों करें? अगर हमारी मुराद अच्छी हो तो क्या उसे हम चाहे जिस साधन से, मार-काट करके भी, पूरा नहीं करेंगे? चोर मेरे घर में घुसे तब क्या मैं साधन का विचार करूँगा? मेरा धर्म { फर्ज } तो उसे किसी भी तरह बाहर निकालने का हीं होगा।

एसा लगता है कि आप यह तो कबूल करते हैं कि हमें सरकार के पास अरज़ियाँ भेजने से कुछ नहीं मिला है और न आगे कभी मिलनेवाला है। तो फिर उन्हें मारकर हम क्यों न लें? जरूरत हो उतनी मार का डर हम हमेशा बनाये रखेंगे। बच्चा अगर आग में पैर रखे और उसे आग से बचाने के लिए हम उस पर रोक लगाये, तो आप भी इसे दोष नहीं मानेंगे। किसी भी तरह हमें अपना काम पूरा कर लेना है।

संपादक: आपने दलील तो अच्छी की। वह एसी है कि बहुतों ने उससे धोखा खाया है। मैं भी एसी हीं दलील करता था। लेकिन अब मेरी आँखें खुल गई हैं और मैं अपनी गलती समझ सक़ता हूँ। आपको वह गलती बताने की कोशिश करूँगा।

पहले तो इस दलील पर विचार करें कि अंग्रेज़ों ने जो कुछ पाया वह मार-काट करके पाया, इसलिए हम भी वैसा हीं करके मनचाही चीज पायें। अंग्रेज़ों ने मार-काट की और हम भी कर सक़ते हैं, यह बात तो ठीक है। लेकिन मार-काट से जैसी चीज उन्हें मिली वैसी हीं हम भी ले सक़ते हैं। आप कबूल करेंगे कि वैसी चीज हमें नहीं चाहिए।

आप मानते हैं कि साधन और साध्य—जरिया और मुराद—के बीच कोई संबंध नहीं है। यह बहुत बड़ी भूल है। इस भूल के कारण जो लोग धार्मिक { दीनदार } कहलाते हैं, उन्होंने घोर कर्म किये हैं। यह तो धतूरे का पौधा लगाकर मोगरे के फूल की इच्छा करने जैसा हुआ। मेरे लिए समुद्र पार करने का साधन जहाज़ हीं हो सक़ता है। अगर मैं पानी में बैलगाड़ी डाल दूँ तो वह गाड़ी और मैं दोनों समुद्र के तले पहुँच जायेंगे। जैसे देव वैसी पूजा— यह वाक्य { फ़िकरा } बहुत सोचने लायक है। उसका गलत अर्थ करके लोग भुलावे में पड़ गये हैं। साधन बीज है और साध्य—हासिल करने की चीज—पेड़ है। इसलिए जितना संबंध चीज और पेड़ के बीच है, उतना हीं साधन और साध्य के बीच है। शैतान को भजकर मैं ईश्वर-भजन का फल पाउ, यह कभी हो हीं नहीं सक़ता। इसलिए यह कहना कि हमें तो ईश्वर को हीं भजना है, साधन भले शैतान हो, बिलकुल अज्ञान की बात है। जैसी करनी वैसी भरनी।

अंग्रेज़ों ने मार-काट करके १८३३ में वोट के (मत के) विशेष अधिकार पाये। क्या मार-काट करके वे अपना फर्ज समझ सके? उनकी मुराद अधिकार पाने की थी, इसलिए उन्होंने मार-काट मचाकर अधिकार पा लिये। सच्चे अधिकार तो फर्ज के फल { नतीजे } हैं; वे अधिकार उन्होंने नहीं पाये। नतीजा यह हुआ कि सबने अधिकार पाने का प्रयत्न किया, लेकिन फर्ज सो गया। जहाँ सभी अधिकार की बात करें, वहाँ कौन किसको दे? वे कोई भी फर्ज अदा नहीं करते, एसा कहने का मतलब यहाँ नहीं है। लेकिन जो अधिकार वे माँगते थे उन्हें हासिल करके उन्होंने वे फर्ज पूरे नहीं किये जो उन्हें करने चाहिए थे।

उन्होंने योग्यता प्राप्त नहीं की, इसलिए उनके अधिकार उनकी गरदन पर जूए की तरह सवार हो बैठे हैं। इसलिए जो कुछ उन्होंने पाया है, वह उनके साधन का हीं परिणाम { नतीजा } है। जैसी चीज़ उन्हें चाहिए थी वैसे साधन उन्होंने काम में लिये।

मुझे अगर आपसे आपकी घड़ी छीन लेनी हो, तो बेशक आपके साथ मुझे मार-पीट करनी होगी। लेकिन अगर मुझे आपकी घड़ी खरीदनी हो, तो आपको दाम देने होंगे। अगर मुझे बख़्शिश के तौर पर आपकी घड़ी लेनी होगी, तो मुझे आपसे विनति { आजिज़ी } करनी होगी। घड़ी पानें के लिए मैं जो साधन काम में लूँगा, उसके अनुसार वह चोरी का माल, मेरा माल या बख़्शिश की चीज़ होगी। तीन साधनों के तीन अलग परिणाम आयेंगे। तब आप कैसे कह सक़ते हैं कि साधन की कोई चिन्ता नहीं? अब चोर को घर में से निकालने की मिसाल लें। मैं आपसे इसमें सहमत नहीं हूँ कि चोर को निकालने के लिए चाहे जो साधन काम में लिया जा सक़ता है।

अगर मेरे घर में मेरा पिता चोरी करने आयेगा, तो मैं एक साधन काम में लूँगा। अगर कोई मेरी पहचान का चोरी करने आयेगा, तो मैं वही साधन काम में नहीं लूँगा। और कोई अनजान आदमी आयेगा, तो मैं तीसरा साधन काम में लूँगा। अगर वह गोरा हो तो एक साधन और हिंदुस्तानी हो तो दूसरा साधन काम में लाना चाहिए, एसा भी शायद आप कहेंगे। अगर कोई मुर्दार लड़का चोरी करने आया होगा, तो मैं बिलकुल दूसरा हीं साधन काम में लूँगा। अगर वह मेरी बराबरी का होगा, तो और हीं कोई साधन मैं काम में लूँगा। और अगर वह हथियारबंद तगड़ा आदमी होगा, तो मैं चुपचाप सो रहूँगा। इसमें पिता से लेकर ताकतवर आदमी तक अलग अलग साधन इस्तेमाल किये जायेंगे। पिता होगा तो भी मुझे लगता है कि मैं सो रहूँगा और हथियार से लैस कोई होगा तो भी मैं सो रहूँगा। पिता में भी बल है, हथियारबंद आदमी में भी बल है। दोनों बलों के बस होकर मैं अपनी चीज को जाने दूँगा। पिता का बल मुझे दया से रूलायेगा। हथियारबंद आदमी का बल मेरे मन में गुस्सा पैदा करेगा; हम कट्टर दुश्मन हो जायेंगे। एसी मुश्किल हालत है। इन मिसालों से हम दोनों साधनों के निर्णय { फैसला } पर तो नहीं पहुँच सकेंगे। मुझे तो सब चोरों के बारे में क्या करना चाहिए यह सूझता है। लेकिन उस इलाज से आप घबरा जायेंगे, इसलिए मैं

आपके सामने उसे नहीं रखता। आप इसे समझ लें; और अगर नहीं समझेंगे तो हर वक्त आपको अलग साधन काम में लेने होंगे। लेकिन आपने इतना तो देखा कि चोर को निकालने के लिए चाहे जो साधन काम नहीं देगा; और जैसा साधन आपका होगा उसके मुताबिक नतीजा आयेगा। आपका धर्म किसी भी साधन से चोर को घर से निकालने का हरगिज नहीं है।

जरा आगे बढ़ें। वह हथियारबंद आदमी आपकी चीज़ ले गया है। आपने उसे याद रखा है। आपके मन में उस पर गुस्सा भरा है। आप उस लुच्चे को अपने लिए नहीं, लेकिन लोगों के कल्याण के लिए सजा देना चाहते हैं। आपने कुछ आदमी जमा किये। उसके घर पर आपने धावा बोलने का निश्चय किया। उसे मालूम हुआ। वह भागा। उसने दूसरे लुटेरे जमा किये। वह भी खीजा हुआ है। अब तो उसने आपका घर दिन-दहाड़े लूटने का संदेशा आपको भेजा है। आप उसके मुकाबले के लिए तैयार बैठे हैं। इस बीच लुटेरा आपके आसपास के लोगों को हैरान करता है। वे आपसे शिकायत करते हैं। आप कहते हैं: "यह सब मैं आप हीं के लिए तो करता हूँ। मेरा माल गया उसकी तो कोई बिसात हीं नहीं" लोग कहते हैं; "पहले तो वह हमें लूटता नहीं था। आपने जब से उसके साथ लड़ाई शुरू की है तभी से उसने यह काम शुरू किया है।" आप दुविधा में फँस जाते हैं। गरीबों के ऊपर आपको रहम है। उनकी बात सही है। अब क्या किया जाय? क्या लुटेरे को छोड़ दिया जाय? इससे तो आपकी इज्जत चली जायेगी। इज्जत सबको प्यारी होती है। आप गरीबों से कहते हैं : "कोई । फ़िक्र नहीं। आइये, मेरा धन आपका हीं है। मैं आपको हथियार देता हूँ। मैं आपको उनका उपयोग सिखाऊँगा। आप उस बदमाश को मारिये, छोड़िये नहीं." यों लड़ाई बढ़ी। लुटेरे बढ़े। लोगों ने खुद होकर मुसीबत मोल ली। चोर से बदला लेने का परिणाम यह आया कि नींद बेचकर जागरण मोल लिया। जहाँ शांति थी वहाँ अशांति पैदा हुई। पहले तो जब मौत आती तभी मरते थे। अब तो सदा हीं मरने के दिन आये। लोग हिम्मत हारकर पस्तहिम्मत { ना हिम्मत, कायर } बने। इसमें मैंने बढ़ा चढ़ाकर कुछ नहीं कहा है, यह आप धीरज से सोचेंगे तो देख सकेंगे। यह एक साधन हुआ।

अब दूसरे साधन की जाँच करें। चोर को आप अज्ञान { नासमझ } मान लेते हैं। कभी मौका मिलने पर उसे समझाने का आपने सोचा है। आप यह भी सोचते हैं कि वह भी हमारे जैसा आदमी है। उसने किस इरादे से चोरी की, यह आपको क्या मालूम? आपके लिए अच्छा रास्ता तो यही है कि जब मौका मिले तब आप उस आदमी के भीतर से चोरी का बीज हीं निकाल दें। एसा आप सोच रहें हैं, इतने में वे भाई साहब फिर से चोरी करने आते हैं। आप नाराज नहीं होते। आपको उस पर दया आती है। आप सोचते हैं कि यह आदमी रोगी है। आप खिड़की-दरवाजे खुले कर देते हैं। आप अपनी सोने की जगह बदल देते हैं। आप अपनी चीजें झट ले जाई जा सकें इस तरह रख देते हैं। चोर आता है। वह घबराता है। यह सब उसे नया हीं मालूम होता है। माल तो वह ले जाता है, लेकिन उसका मन चक्कर में पड़ जाता है। वह गाँव में जाँच-पड़ताल करता है। आपकी दया के बारे में उसको मालूम होता है। वह पछताता है और आपसे माफी माँगता है। आपकी चीजें वापस ले आता है। वह चोरी का धंधा छोड़ देता है। आपका सेवक बन जाता है। आप उसे कामधंधे से लगा देते हैं। यह दूसरा साधन है।

आप देखते हैं कि अलग अलग साधनों के अलग अलग नतीजे आते हैं। सब चोर एसा हीं बरताव करेंगे या सबमें आपका-सा दयाभाव होगा, एसा मैं इससे साबित नहीं करना चाहता। लेकिन यही दिखाना चाहता हूँ कि अच्छे नतीजे लाने के लिए अच्छे हीं साधन चाहिए। और अगर सब नहीं तो ज्यादातर मामलों में हथियार-बल से दयाबल ज्यादा ताकतवर साबित होता है। हथियार में हानि { नुकसान } है, दया में कभी नहीं।

अब अरजी की बात लें। जिसके पीछे बल नहीं है वह अरजी निकम्मी है, इसमें कोई शक नहीं। फिर भी स्व न्यायमूर्ति रानडे कहते थे कि अरजी लोगों को तालीम देने का एक साधन है। उससे लोगों को अपनी स्थिति { हालत } का भान कराया जा सक़ता है और राजकर्ता { हाकिम } को चेतावनी दी जा सकतीं है। यों सोचें तो अरजी निकम्मी चीज है। बराबरी का आदमी अरजी करेगा तो वह उसकी नम्रता की निशानी मानी जाएगी। गुलाम अरजी करेगा तो वह उसकी गुलामी की निशानी होगी। जिस अरजी के पीछे बल है वह

बराबरी के आदमी की अरजी है; और वह अपनी माँग अरजी के रूप में रखता है, यह उसकी खानदानियत को बताता है।

अरजी के पीछे दो तरह के बल होते हैं: "अगर आप नहीं देंगे तो हम आपको मारेंगे।" यह गोला-बारूद का बल है। इसका बुरा नतीजा हम देख चुके। दूसरा बल यह है: "अगर आप नहीं देंगे तो हम आपके अरजदार नहीं रहेंगे। हम अरजदार होंगे तो आप बादशाह बने रहेंगे। हम आपके साथ कोई व्यवहार नहीं रखेंगे।" इस बल को चाहे दयाबल कहें, चाहे आत्मबल कहें या सत्याग्रह कहें। यह बल अविनाशी { लाफ़ानी } है और इस बल का उपयोग करनेवाला अपनी हालत को बराबर समझता है। इसका समावेश हमारे बुजुर्गों ने 'एक ना ही सब रोगों की दवा' में किया है। यह बल जिसमें है उसका हथियार-बल कुछ नहीं बिगाड़ सक़ता।

बच्चा अगर आग में पैर रखे, तो उसको दबाने की मिसाल की छानबीन करने में तो आप हार जायेंगे। बच्चे के साथ आप क्या करेंगे? मान लीजिये कि बच्चा एसा जोर करे कि आपको मारकर वह आग में जा पड़े। तब तो आग में पड़े बिना वह रहेगा हीं नहीं। इसका उपाय आपके पास यह है: या तो आग में पड़ने से रोकने के लिए आप उसके प्राण ले लें, या उसका आग में पड़ना आपसे देखा नहीं जाता इसलिए आप स्वयं आग में पड़कर अपनी जान दे दें। आप बच्चे के प्राण तो नहीं हीं लेंगे। आपमें अगर संपूर्ण दयाभाव न हो, तो मुमकिन है कि आप अपने प्राण नहीं देंगे। तो फिर लाचारी से आप बच्चे को आग में कूदने देंगे। इस तरह आप बच्चे पर हथियार-बल का उपयोग नहीं करते हैं। बच्चे को आप और किसी तरह रोक सकें तो रोकेंगे; और वह बल कम दर्ज का लेकिन हथियार-बल हीं होगा एसा भी आप न समझ लें। वह बल और हीं प्रकार { तरह } का है। उसी को समझ लेना है।

बच्चे को रोकने में आप सिर्फ बच्चे का स्वार्थ देखते हैं। जिसके ऊपर आप अंकुश रखना चाहते हैं, उस पर उसके स्वार्थ के लिए हीं अंकुश रखेंगे। यह मिसाल अंग्रेज़ों पर जरा भी लागू नहीं होती। आप अंग्रेज़ों पर जो हथियार-बल का उपयोग करना चाहते हैं, उसमें आप अपना हीं यानी प्रजा का स्वार्थ देखते हैं। उसमें दया जरा भी नहीं है। अगर

आप यों कहें कि अंग्रेज़ जो अधम—नीच काम करते हैं वह आग है, वे आग में अज्ञान के कारण जाते हैं और आप दया से अज्ञानी को यानी बच्चे को उससे बचाना चाहते हैं, तो इस प्रयोग को आजमाने के लिए आपको जहाँ-जहाँ जो भी आदमी नीच काम करता होगा वहाँ वहाँ पहुँचना होगा और सामनेवाले के—बच्चे के—प्राण लेने के बजाय अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ेगी। इतना पुरूषार्थ { बड़ा काम } आप करना चाहें तो कर सक़ते हैं, आप स्वतंत्र हैं। पर यह बात बिलकुल असंभव है।

१७. सत्याग्रह – आत्मबल

पाठक: आप जिस सत्याग्रह या आत्मबल की बात करते हैं, उसका इतिहास में कोई प्रमाण { सबूत } है? आज तक दुनिया का एक भी राष्ट्र इस बल से ऊपर चढ़ा हो, एसा देखने में नहीं आता। मार-काट के बिना बुरे लोग सीधे रहेंगे हीं नहीं, एसा विश्वास अभी भी मेरे मन में बना हुआ है।

संपादक: कवि तुलसीदासजी ने लिखा है:

दया धरम को मूल है,
पापयूल अभिमान,
तुलसी दया न छाँड़िये,
जब लग घट में प्रान।

मुझे तो यह वाक्य शास्त्र-वचन जैसा लगता है। जैसे दो और दो चार हीं होते हैं, उतना हीं भरोसा मुझे ऊपर के वचन पर है। दयाबल आत्मबल है, सत्याग्रह है। और इस बल के प्रमाण पग पग पर दिखाई देते हैं। अगर यह बल नहीं होता, तो पृथ्वी रसातल (सात पातालों में से एक) में पहुँच गई होती।

लेकिन आप तो इतिहास का प्रमाण चाहते हैं। इसके लिए हमें इतिहास का अर्थ जानना होगा।

'इतिहास' का शब्दार्थ है: 'एसा हो गया।' एसा अर्थ करें तो आपको सत्याग्रह के कई प्रमाण दिये जा सकेंगे। 'इतिहास' जिस अंग्रेज़ी शब्द का तरजुमा है और जिस शब्द का अर्थ बादशाहों या राजाओं की तवारीख़ होता है, उसका अर्थ लेने से सत्याग्रह का प्रमाण नहीं मिल सक़ता। जस्ते की खान में आप अगर चाँदी ढूँढ़ने जायें, तो वह कैसे मिलेगी? 'हिस्टरी' में दुनिया के कोलाहल की हीं कहानी मिलेगी। इसलिए गोरे लोगों में कहावत है कि जिस राष्ट्र की 'हिस्टरी' (कोलाहल) नहीं है वह राष्ट्र सुखी है। राजा लोग कैसे खेलते थे, कैसे खून करते थे, कैसे बैर रखते थे, यह सब 'हिस्टरी' में मिलता है। अगर यही इतिहास होता, अगर इतना हीं हुआ होता, तब तो यह दुनिया कब की डूब गई होती। अगर दुनिया

की कथा लड़ाई से शुरू हुई होती, तो आज एक भी आदमी जिंदा नहीं रहता। जो प्रजा लड़ाई का हीं भोग (शिकार) बन गई, उसकी एसी हीं दशा हुई है। आस्ट्रेलिया के हब्शी लोगों का नामोनिशान मिट गया है। आस्ट्रेलिया के गोरों ने उनमें से शायद हीं किसी को जीने दिया है। जिनकी जड़ हीं खतम हो गई, वे लोग सत्याग्रही नहीं थे। जो जिंदा रहेंगे वे देखेंगे कि आस्ट्रेलिया के गोरे लोगों के भी यही हाल होंगे। 'जो तलवार चलाते हैं उनकी मौत तलवार से हीं होती है।' हमारे यहाँ एसी कहावत है कि 'तैराक की मौत पानी में'।

दुनिया में इतने लोग आज भी जिंदा हैं, यह बताता है कि दुनिया का आधार हथियार-बल पर नहीं है, परन्तु सत्य, दया या आत्मबल पर है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि दुनिया लड़ाई के हंगामों के बावजूद टिकी हुई है। इसलिए लड़ाई के बल के बजाय दूसरा हीं बल उसका आधार है।

हजारों बल्कि लाखों लोग प्रेम के बस रहकर अपना जीवन बसर करते हैं। करोड़ों कुटुम्बों का क्लेश { दुःख } प्रेम की भावना में समा जाता है, डूब जाता है। सैकड़ों राष्ट्र मेलजोल से रहें हैं, इसको 'हिस्टरी' नोट नहीं करती; 'हिस्टरी' कर भी नहीं सकतीं। जब इस दया की, प्रेम की और सत्य की धारा रुकती है, टूटती है, तभी इतिहास में वह लिखा जाता है। एक कुटुम्ब के दो भाई लड़े। इसमें एक ने दूसरे के खिलाफ सत्याग्रह का बल काम में लिया। दोनों फिर से मिल-जुलकर रहने लगे। इसका नोट कौन लेता है? अगर दोनों भाईयों में वकीलों की मदद से या दूसरे कारणों से वैरभाव बढ़ता और वे हथियारों या अदालतों (अदालत एक तरह का हथियार-बल, शरीर-बल हीं है) के जरिये लड़ते, तो उनके नाम अखबारों में छपते, अड़ोस-पड़ोस के लोग जानते और शायद इतिहास में भी लिखे जाते। जो बात कुटुम्बों, जमातों और इतिहास के बारे में सच है, वही राष्ट्रों के बारे में भी समझ लेना चाहिए। कुटुम्ब के लिए एक कानून और राष्ट्र के लिए दूसरा, एसा मानने का कोई कारण नहीं है। 'हिस्टरी' अस्वाभाविक { गैर-कुदरती } बातों को दर्ज करती है। सत्याग्रह स्वाभाविक है, इसलिए उसे दर्ज करने की जरूरत हीं नहीं है।

पाठक: आपके कहे मुताबिक तो यही समझ में आता है कि सत्याग्रह की मिसालें इतिहास में नहीं लिखी जा सकतीं। इस सत्याग्रह को ज्यादा समझने की जरूरत है। आप जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे ज्यादा साफ शब्दो में कहेंगे तो अच्छा होगा।

संपादक: सत्याग्रह या आत्मबल को अंग्रेज़ी में 'पैसिव रेज़िस्टेन्स' कहा जाता है। जिन लोगों ने अपने अधिकार पाने के लिए खुद दुःख सहन किया था, उनके दुःख सहने के ढंग के लिए यह शब्द बरता गया है। उसका ध्येय { मक़सद } लड़ाई के ध्येय से उलटा है। जब मुझे कोई काम पसन्द न आये और वह काम मैं न करूँ, तो उसमें मैं सत्याग्रह या आत्मबल का उपयोग करता हूँ।

मिसाल के तौर पर, मुझे लागू होनेवाला कोई कानून सरकार ने पास किया। वह कानून मुझे पसन्द नहीं है। अब अगर मैं सरकार पर हमला करके यह कानून रद करवाता हूँ, तो कहा जाएगा कि मैंने शरीर-बल का उपयोग किया। अगर मैं उस कानून को मंजूर हीं न करूँ और उस कारण से होनेवाली सजा भुगत लूँ, तो कहा जाएगा कि मैंने आत्मबल या सत्याग्रह से काम लिया। सत्याग्रह में मैं अपना हीं बलिदान देता हूँ।

यह तो सब कोई कहेंगे कि दूसरे का भोग— बलिदान— लेने से अपना भोग देना ज्यादा अच्छा है। इसके सिवा, सत्याग्रह से लड़ते हुए अगर लड़ाई गलत ठहरी, तो सिर्फ लड़ाई छेड़नेवाला हीं दुःख भोगता है। यानी अपनी भूल की सजा वह खुद भोगता है। एसी कई घटनायें हुई हैं जिनमें लोग गलती से शामिल हुए थे। कोई भी आदमी दावे से यह नहीं कह सक़ता कि फलां काम खराब हीं है। लेकिन जिसे वह खराब लगा, उसके लिए तो वह खराब हीं है। अगर एसा हीं है तो फिर उसे वह काम नहीं करना चाहिए और उसके लिए दुःख भोगना, कष्ट सहन करना चाहिए। यही सत्याग्रह की कुंजी है।

पाठक: तब तो आप कानून के खिलाफ होते हैं! यह बेवफाई कही जाएगी। हमारी गिनती हमेशा कानून को माननेवाली प्रजा में होती है। आप तो 'एक्स्ट्रीमिस्ट' से भी आगे बढ़ते दीखते हैं। 'एक्स्ट्रीमिस्ट' कहता है कि जो कानून बन चुके हैं उन्हें तो मानना हीं चाहिए; लेकिन कानून खराब हों तो उनके बनानेवालों को मारकर भगा देना चाहिए।

संपादक: मैं आगे बढ़ता हूँ या पीछे रहता हूँ, इसकी परवाह न आपको होनी चाहिए, न मुझे। हम तो जो अच्छा है उसे खोजना चाहते हैं और उसके मुताबिक बरतना चाहते हैं।

हम कानून को माननेवाली प्रजा हैं, इसका सही अर्थ तो यह है कि हम सत्याग्रही प्रजा हैं। कानून जब पसन्द न आयें तब हम कानून बनानेवालों का सिर नहीं तोड़ते, बल्कि उन्हें रद कराने के लिए खुद उपवास करते हैं खुद दुःख उठाते हैं।

हमें अच्छे या बुरे कानून को मानना चाहिए, एसा अर्थ तो आजकल का है। पहले एसा नहीं था। तब चाहे जिस कानून को लोग तोड़ते थे और उसकी सजा भोगते थे।

कानून हमें पसन्द न हों तो भी उनके मुताबिक चलना चाहिए, यह सिखावन मर्दानगी के खिलाफ है, धर्म के खिलाफ है और गुलामी की हद है।

सरकार तो कहेगी कि हम उसके सामने नंगे होकर नाचें। तो क्या हम नाचेंगे? अगर मैं सत्याग्रही होऊँ तो सरकार से कहूँगा: "यह कानून आप अपने घर में रखिये। मैं न तो आपके सामने नंगा होनेवाला हूँ और न नाचनेवाला हूँ।" लेकिन हम एसे असत्याग्रही हो गये हैं कि सरकार के जुल्म के सामने झुक कर नंगे होकर नाचने से भी ज्यादा नीच काम करते हैं।

जिस आदमी में सच्ची इन्सानियत है, जो खुदा से हीं डरता है, वह और किसी से नहीं डरेगा। दूसरे के बनाये हुए कानून उसके लिए बंधनकारक नहीं होते। बेचारी सरकार भी नहीं कहती कि 'तुम्हें एसा करना हीं पड़ेगा।' वह कहती है कि 'तुम एसा नहीं करोगे तो तुम्हें सजा होगी।' हम अपनी अधम दशा के कारण मान लेते हैं कि हमें 'एसा हीं करना चाहिए', यह हमारा फर्ज है, यह हमारा धर्म है।

अगर लोग एक बार सीख लें कि जो कानून हमें अन्यायी { गैर-इन्साफ़वाला } मालूम हो उसे मानना नामर्दगी है, तो हमें किसी का भी जुल्म बाँध नहीं सक़ता। यही स्वराज्य की कुंजी है।

ज्यादा लोग जो कहें उसे थोड़े लोगों को मान लेना चाहिए, यह तो अनीश्वरी { ला-खुदाई } बात है, एक वहम है। एसी हजारों मिसालें मिलेंगी, जिनमें बहुतों ने जो कहा वह

गलत निकला हो और थोड़े लोगों ने जो कहा वह सही निकला हो। सारे सुधार बहुत से लोगों के खिलाफ जाकर कुछ लोगों ने हीं दाखिल करवाये हैं। ठगों के गाँव में अगर बहुत से लोग यह कहें कि ठगविद्या सीखनी हीं चाहिए, तो क्या कोई साधु ठग बन जाएगा? हरगिज नहीं। अन्यायी कानून को मानना चाहिए, यह वहम जब तक दूर नहीं होता तब तक हमारी गुलामी जानेवाली नहीं है। और इस वहम को सिर्फ सत्याग्रही हीं दूर कर सक़ता है।

शरीर-बल का उपयोग करना, गोला-बारूद काम में लाना, हमारे सत्याग्रह के कानून के खिलाफ है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि हमें जो पसंद है वह दूसरे आदमी से हम (जबरन) करवाना चाहते हैं। अगर यह सही हो तो फिर वह सामनेवाला आदमी भी अपनी पसंद का काम हमसे करवाने के लिए हम पर गोला-बारूद चलाने का हकदार है। इस तरह तो हम कभी एकराय पर पहुँचेंगे हीं नहीं। कोल्हू के बैल की तरह आँखों पर पट्टी बाँधकर भले हीं हम मान लें कि हम आगे बढ़ते हैं। लेकिन दरअसल तो बैल की तरह हम गोल गोल चक्कर हीं काटते रहते हैं। जो लोग एसा मानते हैं कि जो कानून खुद को नापसन्द है उसे मानने के लिए आदमी बँधा हुआ नहीं है, उन्हें तो सत्याग्रह को हीं सही साधन { जरिया } मानना चाहिए; वरना बड़ा विकट { खतरनाक } नतीजा आयेगा।

पाठक: आप जो कहते हैं उस पर से मुझे लगता है कि सत्याग्रह कमज़ोर आदमियों के लिए काफी काम का है। लेकिन जब वे बलवान बन जायें तब तो उन्हें तोप (हथियार) हीं चलाना चाहिए।

संपादक: यह तो आपने बड़े अज्ञान की बात कही। सत्याग्रह सबसे बड़ा—सर्वोपरी बल है। वह जब तोपबल से ज्यादा काम करता है, तो फिर कमज़ोरों का हथियार कैसे माना जाएगा? सत्याग्रह के लिए जो हिम्मत और बहादुरी चाहिए, वह तोप का बल रखनेवाले के पास हो हीं नहीं सकतीं। क्या आप यह मानते हैं कि डरपोक और कमज़ोर आदमी नापसन्द कानून को तोड़ सकेगा? 'एक्स्ट्रीमिस्ट' तोपबल – पशुबल के हिमायती हैं। वे क्यों कानून को मानने की बात कर रहें हैं? मैं उनका दोष नहीं निकालता। वे दूसरी कोई बात कर हीं नहीं सक़ते। वे खुद जब अंग्रेज़ों को मारकर राज्य करेंगे तब आपसे और हमसे (जबरन)

कानून मनवाना चाहेंगे। उनके तरीके के लिए यही कहना ठीक है। लेकिन सत्याग्रही तो कहेगा कि जो कानून उसे पसन्द नहीं हैं उन्हें वह स्वीकार नहीं करेगा, फिर चाहे उसे तोप के मुँह पर बाँधकर उसकी धज्जियाँ क्यों न उड़ा दी जायँ !

आप क्या मानते हैं? तोप चलाकर सैकड़ों को मारने में हिम्मत की जरूरत है या हँसते-हँसते तोप के मुँह पर बँध कर धज्जियाँ उड़ने देने में हिम्मत की जरूरत है? खुद मौत को हथेली में रखकर जो चलता-फिरता है वह रणवीर है या दूसरों की मौत को अपने हाथ में रखता है वह रणवीर है?

यह निश्चित मानिये कि नामर्द आदमी घड़ी भर के लिए भी सत्याग्रही नहीं रह सक़ता।

हाँ, यह सही है कि शरीर से जो दुबला हो वह भी सत्याग्रही हो सक़ता है। एक आदमी भी (सत्याग्रही) हो सक़ता है और लाखों लोग भी हो सक़ते हैं। मर्द भी सत्याग्रही हो सक़ता है; औरत भी हो सकतीं है। उसे अपना लश्कर तैयार करने की जरूरत नहीं रहती। उसे पहलवानों की कुश्ती सीखने की जरूरत नहीं रहती। उसने अपने मन को काबू में किया कि फिर वह वनराज— सिंह की तरह गर्जना कर सक़ता है; और जो उसके दुश्मन बन बैठे हैं उनके दिल इस गर्जना से फट जाते हैं।

सत्याग्रह एसी तलवार है, जिसके दोनों ओर धार है। उसे चाहे जैसे काम में लिया जा सक़ता है। जो उसे चलाता है और जिस पर वह चलाई जाती है, वे दोनों सुखी होते हैं। वह खून नहीं निकालती, लेकिन उससे भी बड़ा परिणाम ला सकतीं है। उसको जंग नहीं लग सकतीं। उसे कोई (चुराकर) ले नहीं जा सक़ता। अगर सत्याग्रही दूसरे सत्याग्रही के साथ होड़ में उतरता है, तो उसमें उसे थकान लगती हीं नहीं। सत्याग्रही की तलवार को म्यान की जरूरत नहीं रहती। उसे कोई छीन नहीं सक़ता। फिर भी सत्याग्रह को आप कमज़ोरों का हथियार माने तब तो उसे अँधेर हीं कहा जाएगा।

पाठक: आपने कहा कि वह हिंदुस्तान का खास हथियार है। तो कया हिंदुस्तान में तोप के बल का कभी उपयोग नहीं हुआ है?

संपादक: आप हिंदुस्तान का अर्थ मुट्ठीभर राजा करते हैं। मेरे मन तो हिंदुस्तान का अर्थ वे करोड़ों किसान हैं, जिनके सहारे राजा और हम सब जी रहें हैं।

राजा तो हथियार काम में लायेंगे हीं। उनका वह रिवाज हीं हो गया है। उन्हें हुक्म चलाना है। लेकिन हुक्म माननेवाले को तोपबल की जरूरत नहीं है। दुनिया के ज्यादातर लोग हुक्म माननेवाले हैं। उन्हें या तो तोपबल या सत्याग्रह का बल सिखाना चाहिए। जहाँ वे तोपबल सीखते हैं वहाँ राजा-प्रजा दोनों पागल जैसे हो जाते हैं। जहाँ हुक्म माननेवालों ने सत्याग्रह करना सीखा है वहाँ राजा का जुल्म उसकी तीन गज की तलवार से आगे नहीं जा सक़ता; और हुक्म माननेवालों ने अन्यायी हुक्म की परवाह भी नहीं की है। किसान किसी के तलवार-बल के बस न तो कभी हुए हैं, और न होंगे। वे तलवार चलाना नहीं जानते; न किसी की तलवार से वे डरते हैं। वे मौत को हमेशा अपना तकिया बनाकर सोनेवाली महान प्रजा हैं। उन्होंने मौत का डर छोड़ दिया है, इसलिए सबका डर छोड़ दिया है। यहाँ मैं कुछ बढ़ा-चढ़ाकर तसवीर खींचता हूँ, यह ठीक है। लेकिन हम जो तलवार के बल से चकित { दंग } हो गये हैं, उनके लिए यह कुछ ज्यादा नहीं है।

बात यह है कि किसानों ने, प्रजा-मंडलों ने अपने और राज्य के कारोबार में सत्याग्रह को काम में लिया है। जब राजा जुल्म करता है तब प्रजा रूठती है। यह सत्याग्रह हीं है।

मुझे याद है कि एक रियासत में रैयत को अमुक हुक्म पसन्द नहीं आया, इसलिए रैयत ने हिजरत करना—गाँव खाली करना – शुरू कर दिया। राजा घबड़ाये। उन्होंने रैयत से माफी माँगी और हुक्म वापस ले लिया। एसी मिसालें तो बहुत मिल सकतीं हैं। लेकिन वे ज्यादातर भारत-भूमि की हीं उपज होंगी। एसी रैयत जहाँ है वहीं स्वराज्य है। इसके बिना स्वराज्य कुराज्य है।

पाठक: तो क्या आप यह कहेंगे कि शरीर को कसने की जरूरत हीं नहीं है?

संपादक: एसा मैं कभी नहीं कहूँगा। शरीर को कसे बिना सत्याग्रही होना मुश्किल है। अकसर जिन शरीरों को गलत लाड़ लड़ा कर या सहलाकर कमज़ोर बना दिया गया है, उनमें रहनेवाला मन भी कमज़ोर होता है। और जहाँ मन का बल नहीं है वहाँ आत्मबल कैसे हो सक़ता है? हमें बाल-विवाह वगैरा के कुरिवाज को और ऐश-आराम की बुराई को

छोड़कर शरीर को कसना हीं होगा। अगर मैं मरियल और कमज़ोर आदमी को यकायक तोप के मुँह पर खड़ा हो जाने के लिए कहूँ, तो लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे।

पाठक: आपके कहने से तो एसा लगता है कि सत्याग्रही होना मामूली बात नहीं है, और अगर एसा है तो कोई आदमी सत्याग्रही कैसे बन सक़ता है, यह आपको समझाना होगा।

संपादक: सत्याग्रही होना आसान है। लेकिन जितना वह आसान है उतना हीं मुश्किल भी है। चौदह बरस का एक लड़का सत्याग्रही हुआ है, यह मेरे अनुभव की बात है। रोगी आदमी सत्याग्रही हुए हैं, यह भी मैंने देखा है। मैंने यह भी देखा है कि जो लोग शरीर से बलवान थे और दूसरी बातों में भी सुखी थे, वे सत्याग्रही नहीं हो सके।

अनुभव से मैं देखता हूँ कि जो देश के भले के लिए सत्याग्रही होना चाहता है, उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, गरीबी अपनानी चाहिए, सत्य का पालन तो करना हीं चाहिए और हर हालत में अभय { निडर } बनना चाहिए।

ब्रह्मचर्य एक महान व्रत है, जिसके बिना मन मजबूत नहीं होता। ब्रह्मचर्य का पालन न करने से मनुष्य वीर्यवान नहीं रहता, नामर्द और कमज़ोर हो जाता है। जिसका मन विषय { नफ़सानी ख्वाहिश } में भटकता है, वह क्या शेर मारेगा? यह बात अनगिनत मिसालों से साबित की जा सकतीं है। तब सवाल यह उठता है कि घर-संसारी को क्या करना चाहिए। लेकिन एसा सवाल उठने की कोई जरूरत नहीं। घर-संसारी ने जो संग किया (स्त्री की सोहबत की) वह विषय-भोग नहीं है, एसा कोई नहीं कहेगा। संतान पैदा करने के लिए हीं अपनी स्त्री का संग करने की बात कही गयी है। और सत्याग्रही को संतान पैदा करने की इच्छा नहीं होनी चाहिए। इसलिए संसारी होने पर भी वह ब्रह्मचर्य का पालन कर सक़ता है। यह बात ज्यादा खोलकर लिखने की जरूरत नहीं। स्त्री का क्या विचार है? यह सब कैसे हो सक़ता है? एसे विचार मन में पैदा होते हैं। फिर भी जिसे महान कार्यों में हिस्सा लेना है, उसे तो एसे सवालों का हल ढूँढ़ना हीं होगा।

जैसे ब्रह्मचर्य की जरूरत है वैसे हीं गरीबी को अपनाने की भी जरूरत है। पैसे का लोभ और सत्याग्रह का सेवनपालन (दोनों साथ साथ) कभी नहीं चल सक़ते। लेकिन मेरा मतलब यह नहीं है कि जिसके पास पैसा है वह उसे फेंक दे। फिर भी पैसे के बारे में

लापरवाह रहने की जरूरत है। सत्याग्रह का सेवन करते हुए अगर पैसा चला जाय, तो चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

जो सत्य का सेवन नहीं करता, वह सत्य का बल, सत्य की ताक़त कैसे दिखा सकेगा? इसलिए सत्य की तो पूरी-पूरी जरूरत रहेगी हीं। बड़े से बड़ा नुकसान होने पर भी सत्य को नहीं छोड़ा जा सक़ता। सत्य के लिए कुछ छिपाने को होता हीं नहीं। इसलिए सत्याग्रही के लिए छिपी सेना की जरूरत नहीं होती। जान बचाने के लिए झूठ बोलना चाहिए या नहीं, एसा सवाल यहाँ मन में नहीं उठाना चाहिए। जिसे झूठ का बचाव करना है, वही एसे बेकार सवाल उठाता है। जिसे सत्य की हीं राह लेनी है, उसके सामने एसे धर्म-संकट { दुबिधा } कभी आते हीं नहीं। एसी मुश्किल हालत में आ पड़े तो भी सत्यवादी उसमें से उबर जाता है।

अभय के बिना तो सत्याग्रही की गाड़ी एक कदम भी आगे नहीं चल सकतीं। अभय संपूर्ण और सब बातों के लिए होना चाहिए। जमीन-जायदाद का, झूठी इज्ज़त का, सगे-संबंधियों का, राज-दरबार का, शरीर को पहुँचनेवाली चोटों का और मरण का अभय हो, तभी सत्याग्रह का पालन हो सक़ता है। यह सब करना मुश्किल है, एसा मानकर इसे छोड़ नहीं देना चाहिए। जो सिर पर पड़ता है उसे सह लेने की शक्ति कुदरत ने हर मनुष्य को दी है। जिसे देशसेवा न करनी हो, उसे भी एसे गुणों का सेवन करना चाहिए।

इसके सिवा, हम यह भी समझ सक़ते हैं कि जिसे हथियार-बल पाना होगा, उसे भी इन बातों की जरूरत रहेगी। रणवीर होना कोई एसी बात नहीं कि किसी ने इच्छा की और तुरन्त रणवीर हो गया। योद्धा (लड़वैया) को ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा, भिखारी बनना होगा। रण में जिसके भीतर अभय न हो वह लड़ नहीं सक़ता। उसे (योद्धा को) सत्यव्रत का पालन करने की उतनी जरूरत नहीं है, एसा शायद किसी को लगे। लेकिन जहाँ अभय है वहाँ सत्य कुदरती तौर पर रहता हीं है। मनुष्य जब सत्य को छोड़ता है तब किसी तरह के भय के कारण हीं छोड़ता है।

इसलिए इन चार गुणों { सिफ़तों } से डर जाने का कोई कारण नहीं है। फिर, तलवारबाज़ को और भी कुछ बेकार कोशिशें करनी पड़ती हैं, जो सत्याग्रही को नहीं करनी

पड़तीं। तलवारबाज़ को जो दूसरी कोशिशें करनी पड़ती हैं, उसका कारण भय है। अगर उसमें पूरी निडरता आ जाय, तो उसी पल उसके हाथ से तलवार गिर जाएगी। फिर उसे तलवार के सहारे की जरूरत नहीं रहती। जिसकी किसी से दुश्मनी नहीं है, उसे तलवार की जरूरत हीं नहीं है। सिंह के सामने आनेवाले एक आदमी के हाथ की लाठी अपने-आप उठ गई। उसने देखा कि अभय का पाठ उसने सिर्फ ज़बानी हीं किया था। उसने लाठी छोड़ी और वह निर्भय-निड़र बना।

———————————

१. गांधीजी ने 'दिहमूल' पाठ लिया है। -अनुवादक

१८. शिक्षा

पाठक: आपने इतना सारा कहा, परन्तु उसमें कहीं भी शिक्षा –तालीम की जरूरत तो बताई हीं नहीं। हम शिक्षा की कमी की हमेशा शिकायत करते रहते हैं। लाज़िमी तालीम देने का आन्दोलन हम सारे देश में देखते हैं। महाराजा गायकवाड़ ने (अपने राज्य में) लाज़िमी शिक्षा शुरू की है। उसकी ओर सबका ध्यान गया है। हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। यह सारी कोशिश क्या बेकार हीं समझनी चाहिए?

संपादक: अगर हम अपनी सभ्यता { तहजीब } को सबसे अच्छी मानते हैं, तब तो मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ेगा कि वह कोशिश ज्यादातर बेकार हीं है। महाराजा साहब और हमारे दूसरे धुरन्धर { बहुत बड़े } नेता सबको तालीम देने की जो कोशिश कर रहें हैं, उसमें उनका हेतु निर्मल है। इसलिए उन्हें धन्यवाद हीं देना चाहिए। लेकिन उनके हेतु का जो नतीजा आने की संभावना है, उसे हम छिपा नहीं सक़ते।

शिक्षा: तालीम का अर्थ क्या है? अगर उसका अर्थ सिर्फ अक्षरज्ञान हीं हो, तो वह तो एक साधन जैसी हीं हुईं। उसका अच्छा उपयोग भी हो सक़ता है और बुरा उपयोग भी हो सक़ता है। एक शस्त्र { औज़ार } से चीर-फाड़ करके बीमार को अच्छा किया जा सक़ता है और वही शस्त्र किसी की जान लेने के लिए भी काम में लाया जा सक़ता है। अक्षर-ज्ञान का भी एसा हीं है। बहुत से लोग उसका बुरा उपयोग करते हैं, यह तो हम देखते हीं हैं। उसका अच्छा उपयोग प्रमाण { मुकाबले } में कम हीं लोग करते हैं। यह बात अगर ठीक है तो इससे यह साबित होता है कि अक्षर-ज्ञान से दुनिया को फायदे के बदले नुकसान हीं हुआ है।

शिक्षा का साधारण अर्थ अक्षर-ज्ञान हीं होता है। लोगों को लिखना, पढ़ना और हिसाब करना सिखाना बुनियादी या प्राथमिक – प्रायमरी – शिक्षा कहलाती है। एक किसान ईमानदारी से खुद खेती करके रोटी कमाता है। उसे मामूली तौर पर दुनियावी ज्ञान है। अपने माँ-बाप के साथ कैसे बरतना, अपनी स्त्री के साथ कैसे बरतना, बच्चों से कैसे पेश आना, जिस देहात में वह बसा हुआ है वहाँ उसकी चालढाल कैसी होनी चाहिए, इस सबका उसे काफी ज्ञान है। वह नीति के नियम समझता है और उनका पालन करता है। लेकिन

वह अपने दस्तखत करना नहीं जानता। इस आदमी को आप अक्षर-ज्ञान देकर क्या करना चाहते हैं? उसके सुख में आप कौन सी बढ़ती करेंगे? क्या उसकी झोंपड़ी या उसकी हालत के बारे में आप उसके मन में असंतोष पैदा करना चाहते हैं? एसा करना हो तो भी उसे अक्षर-ज्ञान देने की जरूरत नहीं है। पश्चिम के असर के नीचे आकर हमने यह बात चलायी है कि लोगों को शिक्षा देनी चाहिए। लेकिन उसके बारे में हम आगे-पीछे की बात सोचते हीं नहीं।

अब ऊंची शिक्षा को लें। मैं भूगोल-विद्या सीखा, खगोल-विद्या (आकाश के तारों की विद्या) सीखा, बीजगणित (एलजब्रा) भी मुझे आ गया, रेखागणित (ज्योमेट्री) का ज्ञान भी मैंने हासिल किया, भूगर्भ-विद्या को भी मैं पी गया। लेकिन उससे क्या? उससे मैंने अपना कौन सा भला किया? अपने आसपास के लोगों का क्या भला किया? किस मकसद से मैंने वह ज्ञान हासिल किया? उससे मुझे क्या फायदा हुआ? एक अंग्रेज़ विद्वान (हक्सली) ने शिक्षा के बारे में यों कहा है: "उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसके शरीर को एसी आदत डाली गई है कि वह उसके बस में रहता है, जिसका शरीर चैन से और आसानी से सौंपा हुआ काम करता है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी { इन्साफ़ को परखनेवाली } है। उसने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसका मन कुदरती कानूनों से भरा है और जिसकी इन्द्रियाँ उसके बस में हैं, जिसके मन की भावनायें बिलकुल शुद्ध हैं, जिसे नीच कामों से नफ़रत है और जो दूसरों को अपने जैसा मानता है। एसा आदमी हीं सच्चा शिक्षित (तालीमशुदा) माना जाएगा, क्योंकि वह कुदरत के कानून के मुताबिक चलता है। कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा।" अगर यही सच्ची शिक्षा हो तो मैं कसम खाकर कहूँगा कि ऊपर जो शास्त्र मैंने गिनाए हैं उनका उपयोग मेरे शरीर या मेरी इन्द्रियों को बस में करने के लिए मुझे नहीं करना पड़ा। इसलिए प्रायमरी – प्राथमिक शिक्षा को लीजिये या ऊँची शिक्षा को लीजिये, उसका उपयोग मुख्य बात में नहीं होता। उससे हम मनुष्य नहीं बनते – उससे हम अपना कर्तव्य { फर्ज } नहीं जान सक़ते।

पाठक: अगर एसा हीं है, तो मैं आपसे एक सवाल करूँगा। आप ये जो सारी बातें कह रहें हैं, वह किसकी बदौलत कह रहें हैं? अगर आपने अक्षर-ज्ञान और ऊँची शिक्षा नहीं पाई होती, तो ये सब बातें आप मुझे कैसे समझा पाते?

संपादक: आपने अच्छी सुनाई। लेकिन आपके सवाल का मेरा जवाब भी सीधा हीं है। अगर मैंने ऊँची या नीची शिक्षा नहीं पाई होती, तो मैं नहीं मानता कि मैं निकम्मा आदमी हो जाता। अब ये बातें कहकर मैं उपयोगी बनने की इच्छा रखता हूँ। एसा करते हुए जो कुछ मैंने पढ़ा उसे मैं काम में लाता हूँ; और उसका उपयोग, अगर वह उपयोग हो तो, मैं अपने करोड़ों भाईयों के लिए नहीं कर सक़ता, सिर्फ आप जैसे पढ़े-लिखों के लिए हीं कर सकता हूँ। इससे भी मेरी हीं बात का समर्थन { ताईद } होता है। मैं और आप दोनों गलत शिक्षा के पंजे में फैंस गये थे। उसमें से मैं अपने को मुक्त हुआ मानता हूँ। अब वह अनुभव मैं आपको देता हूँ और उसे देते समय ली हुई शिक्षा का उपयोग करके उसमें रही सड़न मैं आपको दिखाता हूँ।

इसके सिवा, आपने जो बात मुझे सुनाई उसमें आप गलती खा गये, क्योंकि मैंने अक्षर-ज्ञान को (हर हालत में) बुरा नहीं कहा है। मैंने तो इतना हीं कहा है कि उस ज्ञान की हमें मूर्ति की तरह पूजा नहीं करनी चाहिए। वह हमारी कामधेनु { मनचाहा देनेवाली गाय } नहीं है। वह अपनी जगह पर शोभा दे सक़ता है। और वह जगह यह है: जब मैंने और आपने अपनी इन्द्रियों को बस में कर लिया हो, जब हमने नीति की नींव मजबूत बना ली हो, तब अगर हमें अक्षर-ज्ञान पाने की इच्छा हो, तो उसे पाकर हम उसका अच्छा उपयोग कर सक़ते हैं। वह शिक्षा आभूषण { गहना } के रूप में अच्छी लग सकतीं है। लेकिन अक्षर-ज्ञान का अगर आभूषण के तौर पर हीं उपयोग हो, तो एसी शिक्षा को लाज़िमी करने की हमें जरूरत नहीं। हमारे पुराने स्कूल हीं काफी हैं। वहाँ नीति को पहला स्थान दिया जाता है। वह सच्ची प्राथमिक शिक्षा है। उस पर हम जो इमारत खड़ी करेंगे वह टिक सकेगी।

पाठक: तब क्या मेरा यह समझना ठीक है कि आप स्वराज्य के लिए अंग्रेज़ी शिक्षा का कोई उपयोग नहीं मानते?

संपादक: मेरा जवाब 'हाँ' और 'नहीं' दोनों है। करोड़ों लोगों को अंग्रेज़ी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मेकोले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। उसने इसी इरादे से अपनी योजना बनाई थी, एसा मैं नहीं सुझाना चाहता। लेकिन उसके काम का नतीजा यही निकला है। यह कितने दुःख की बात है कि हम स्वराज्य की बात भी पराई भाषा में करते हैं?

जिस शिक्षा को अंग्रेज़ों ने ठुकरा दिया है वह हमारा सिंगार बनती है, यह जानने लायक है। उन्हीं के विद्वान कहते रहते हैं कि उसमें यह अच्छा नहीं है, वह अच्छा नहीं है। वे जिसे भूल-से गये हैं, उसी से हम अपने अज्ञान के कारण चिपके रहते हैं। उनमें अपनी अपनी भाषा की उन्नति करने की कोशिश चल रही है। वेल्स इंग्लैंड का एक छोटा सा परगना है; उसकी भाषा धूल जैसी नगण्य है। एसी भाषा का अब जीर्णोद्धार[१] हो रहा है।

वेल्स के बच्चे वेल्श भाषा में हीं बोलें, एसी कोशिश वहाँ चल रही है। इसमें इंग्लैंड के खजांची लॉयड जोर्ज बड़ा हिस्सा लेते हैं। और हमारी दशा कैसी है? हम एक-दूसरे को पत्र लिखते हैं तब गलत अंग्रेज़ी में लिखते हैं। एक साधारण एम. ए. पास आदमी भी एसी गलत अंग्रेज़ी से बचा नहीं होता। हमारे अच्छे से अच्छे विचार प्रगट { जाहिर } करने का जरिया है अंग्रेज़ी; हमारी कांग्रेस का कारोबार भी अंग्रेज़ी में चलता है। अगर एसा लंबे अरसे तक चला, तो मेरा मानना है कि आनेवाली पीढ़ी हमारा तिरस्कार करेगी और उसका शाप { बददुआ } हमारी आत्मा को लगेगा।

आपको समझना चाहिए कि अंग्रेज़ी शिक्षा लेकर हमने अपने राष्ट्र को गुलाम बनाया है। अंग्रेज़ी शिक्षा से दंभ { ढोंग }, राग { ममता } द्वेष }, जुल्म वगैरा बढ़े हैं। अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुए लोगों ने प्रजा को ठगने में, उसे परेशान करने में कुछ भी उठा नहीं रखा है। अब अगर हम अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुए लोग उसके लिए कुछ करते हैं, तो उसका हम पर जो कर्ज चढ़ा हुआ है उसका कुछ हिस्सा हीं हम अदा करते हैं।

यह क्या कम जुल्म की बात है कि अपने देश में अगर मुझे इन्साफ़ पाना हो, तो मुझे अंग्रेज़ी भाषा का उपयोग करना चाहिए! बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा में बोल हीं नहीं सक़ता! दूसरे आदमी को मेरे लिए तरजुमा कर देना चाहिए! यह कुछ कम दंभ है? यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है? इसमें मैं अंग्रेज़ों का दोष निकालूँ या अपना? हिंदुस्तान

को गुलाम बनानेवाले तो हम अंग्रेज़ी जाननेवाले लोग हीं हैं। राष्ट्र की हाय अंग्रेज़ों पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम पर पड़ेगी।

लेकिन मैंने आपसे कहा कि मेरा जवाब 'हाँ' और 'ना' दोनों है । हाँ! कैसे सो मैंने आपको समझाया।

अब 'ना' कैसे यह बताता हूँ। हम सभ्यता के रोग में एसे फँस गये हैं कि अंग्रेज़ी शिक्षा बिलकुल लिये बिना अपना काम चला सकें एसा समय अब नहीं रहा। जिसने वह शिक्षा पाई है, वह उसका अच्छा उपयोग करे। अंग्रेज़ों के साथ के व्यवहार में, एसे हिंदुस्तानियों के साथ के व्यवहार में जिनकी भाषा हम समझ न सक़ते हों और अंग्रेज़ खुद अपनी सभ्यता से कैसे परेशान हो गये हैं यह समझने के लिए अंग्रेज़ी का उपयोग किया जाय। जो लोग अंग्रेज़ी पढ़े हुए हैं उनकी संतानों को पहले तो नीति सिखानी चाहिए, उनकी मातृभाषा { मादरी जबान } सिखानी चाहिए और हिंदुस्तान की एक दूसरी भाषा सिखानी चाहिए। बालक जब पुख्ता (पक्की) उम्र के हो जायें तब भले हीं वे अंग्रेज़ी शिक्षा पायें, और वह भी उसे मिटाने के इरादे से, न कि उसके जरिये पैसे कमाने के इरादे से। एसा करते हुए भी हमें यह सोचना होगा कि अंग्रेज़ी में क्या सीखना चाहिए और क्या नहीं सीखना चाहिए। कोन से शास्त्र पढ़ने चाहिए, यह भी हमें सोचना होगा। थोड़ा विचार करने से हीं हमारी समझ में आ जाएगा कि अगर अंग्रेज़ी डिग्री लेना हम बन्द कर दें, तो अंग्रेज हाकिम चौकेंगे।

पाठक: तब कैसी शिक्षा दी जाय?

संपादकः उसका जवाब ऊपर कुछ हद तक आ गया है। फिर भी इस सवाल पर हम और विचार करें। मुझे तो लगता है कि हमें अपनी सभी भाषाओं को उज्ज्वल—शानदार बनाना चाहिए। हमें अपनी भाषा में हीं शिक्षा लेनी चाहिए— इसके क्या मानी है, इसे ज्यादा समझाने का यह स्थान नहीं है। जो अंग्रेजी पुस्तकें काम की हैं, उनका हमें अपनी भाषा में अनुवाद करना होगा। बहुत से शास्त्र सीखने का दंभ और वहम हमें छोड़ना होगा। सबसे पहले तो धर्म की शिक्षा या नीति की शिक्षा दी जानी चाहिए। हर एक पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फारसी का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिंदुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों

और पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तरी और पश्चिमी हिंदुस्तान के लोगों को तामिल सीखनी चाहिए। सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी हीं होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिंदू-मुसलमानों के संबंध ठीक रहें, इसलिए बहुत से हिंदुस्तानियों का इन दोनों लिपियों को जान लेना जरूरी है। एसा होने से हम आपस के व्यवहार में अंग्रेज़ी को निकाल सकेंगे।

और यह सब किसके लिए जरूरी है? हम जो गुलाम बन गये हैं उनके लिए। हमारी गुलामी की वजह से देश की प्रजा गुलाम बनी है। अगर हम गुलामी से छूट जायँ, तो प्रजा तो छूट हीं जाएगी।

पाठक: आपने जो धर्म की शिक्षा की बात कही वह बड़ी कठिन है।

संपादक: फिर भी उसके बिना हमारा काम नहीं चल सक़ता। हिंदुस्तान कभी नास्तिक नहीं बनेगा। हिंदुस्तान की भूमि में नास्तिक फल-फूल नहीं सकते। बेशक, यह काम मुश्किल है। धर्म की शिक्षा का खयाल करते हीं सिर चकराने लगता है। धर्म के आचार्य दंभी और स्वार्थी { खुदगर्ज } मालूम होते हैं। उनके पास पहुँचकर हमें नम्र भाव से उन्हें समझाना होगा। उसकी कुंजी मुल्लों, दस्तूरों और ब्राह्मणों के हाथ में है। लेकिन उनमें अगर सद्‌बुद्धि पैदा न हो, तो अंग्रेज़ी शिक्षा के कारण हममें जो जोश पैदा हुआ है उसका उपयोग करके हम लोगों को नीति की शिक्षा दे सक़ते हैं। यह कोई बहुत मुश्किल बात नहीं है। हिंदुस्तानी सागर के किनारे पर हीं मैल जमा है। उस मैल से जो गंदे हो गये हैं उन्हें साफ होना है। हम लोग एसे हीं हैं और खुद हीं बहुत कुछ साफ हो सक़ते हैं। मेरी यह टीका करोड़ों लोगों के बारे में नहीं है। हिंदुस्तान को असली रास्ते पर लाने के लिए हमें हीं असली रास्ते पर आना होगा। बाकी करोड़ों लोग तो असली रास्ते पर हीं हैं। उसमें सुधार, बिगाड़, उन्नति { तरक्की }, अवनति { गिरावट } समय के अनुसार होते हीं रहेंगे। पश्चिम की सभ्यता को निकाल बाहर करने की हीं हमें कोशिश करनी चाहिए। दूसरा सब अपने-आप ठीक हो जाएगा।

---

१. उद्धार-संवार, फिर से जिलाने की कोशिश

१९. मशीनें

पाठक: आप पश्चिम की सभ्यता को निकाल बाहर करने की बात कहते हैं, तब तो आप यह भी कहेंगे कि हमें कोई भी मशीन नहीं चाहिए।

संपादक: मुझे जो चोट लगी थी उसे यह सवाल करके आपने ताजा कर दिया है। मि. रमेशचन्द्र दत्त की पुस्तक *हिंदुस्तान का आर्थिक इतिहास* जब मैंने पढ़ी, तब भी मेरी एसी हालत हो गई थी। उसका फिर से विचार करता हूँ, तो मेरा दिल भर आता है। मशीन की झपट लगने से हीं हिंदुस्तान पामाल हो गया है। मैन्चेस्टर ने हमें जो नुकसान पहुँचाया है, उसकी तो कोई हद हीं नहीं है। हिंदुस्तान से कारीगरी जो करीब-करीब खतम हो गई, वह मैन्चेस्टर का हीं काम है।

लेकिन मैं भूलता हूँ। मैन्चेस्टर को दोष कैसे दिया जा सक़ता है? हमने उसके कपड़े पहने तभी तो उसने कपड़े बनाये। बंगाल की बहादुरी का वर्णन { जिक्र } जब मैंने पढ़ा तब मुझे हर्ष { भारी खुशी } हुआ। बंगाल में कपड़े की मिलें नहीं हैं, इसलिए लोगों ने अपना असली धंधा फिर से हाथ में ले लिया। बंगाल बम्बई की मिलों को बढ़ावा देता है वह ठीक हीं है; लेकिन अगर बंगाल ने तमाम मशीनों से परहेज किया होता, उनका बायकाट – बहिष्कार किया होता, तो और भी अच्छा होता।

मशीनें यूरोप को उजाड़ने लगी हैं और वहाँ की हवा अब हिंदुस्तान में चल रही है। यंत्र आज की सभ्यता की मुख्य निशानी है और वह महापाप है, एसा मैं तो साफ देख सकता हूँ।

बम्बई की मिलों में जो मजदूर काम करते हैं, वे गुलाम बन गये हैं। जो औरतें उनमें काम करती हैं, उनकी हालत देखकर कोई भी काँप उठेगा। जब मिलों की वर्षा नहीं हुई थी तब वे औरतें भूखों नहीं मरती थीं। मशीन की यह हवा अगर ज्यादा चली, तो हिंदुस्तान की बुरी दशा होगी।

मेरी बात आपको कुछ मुश्किल मालूम होती होगी। लेकिन मुझे कहना चाहिए कि हम हिंदुस्तान में मिलें कायम करें, उसके बजाय हमारा भला इसी में है कि हम मैन्चेस्टर को और भी रूपये भेजकर उसका सड़ा हुआ कपड़ा काम में लें; क्योंकि उसका कपड़ा

काम में लेने से सिर्फ हमारे पैसे हीं जायेंगे। हिंदुस्तान में अगर हम मैन्चेस्टर कायम करेंगे तो पैसा हिंदुस्तान में हीं रहेगा, लेकिन वह पैसा हमारा खून चूसेगा; क्योंकि वह हमारी नीति को बिलकुल खतम कर देगा। जो लोग मिलों में काम करते हैं उनकी नीति कैसी है, यह उन्हीं से पूछा जाय। उनमें से जिन्होंने रूपये जमा किये हैं, उनकी नीति दूसरे पैसेवालों से अच्छी नहीं हो सकतीं। अमरीका के रॉकफेलरों से हिंदुस्तान के रॉकफेलर कुछ कम हैं, एसा मानना निरा अज्ञान है। गरीब हिंदुस्तान तो गुलामी से छूट सकेगा, लेकिन अनीति से पैसेवाला बना हुआ हिंदुस्तान गुलामी से कभी नहीं छूटेगा।

मुझे तो लगता है कि हमें यह स्वीकार करना होगा कि अंग्रेज़ी राज्य को यहाँ टिकाए रखनेवाले ये धनवान लोग हीं हैं। एसी स्थिति में हीं उनका स्वार्थ सधेगा। पैसा आदमी को दीन { लाचार } बना देता है। एसी दूसरी चीज दुनिया में विषय-भोग { शहवत } है। ये दोनों विषय { बातें } विषमय { जहरीले } हैं। उनका डंक साँप के डंक से ज्यादा जहरीला है। जब साँप काटता है तो हमारा शरीर लेकर हमें छोड़ देता है। जब पैसा या विषय काटता है तब वह शरीर, ज्ञान, मन सब-कुछ ले लेता है, तो भी हमारा छुटकारा नहीं होता। इसलिए हमारे देश में मिलें कायम हों, इसमें खुश होने जैसा कुछ नहीं है।

पाठक: तब क्या मिलों को बन्द कर दिया जाय?

संपादक: यह बात मुश्किल है। जो चीज स्थायी या मजबूत हो गई है, उसे निकालना मुश्किल है। इसीलिए काम शुरू न करना पहली बुद्धिमानी है।[१] मिल-मालिकों की ओर हम नफ़रत की निगाह से नहीं देख सक़ते। हमें उन पर दया करनी चाहिए। वे यकायक मिलें छोड़ दें, यह तो मुमकिन नहीं है; लेकिन हम उनसे एसी बिनती कर सक़ते हैं कि वे अपने इस साहस को बढ़ाये नहीं। अगर वे देश का भला करना चाहें, तो खुद अपना काम धीरे धीरे कम कर सकते हैं। वे खुद पुराने, प्रौढ़, पवित्र चरखे देश के हजारों घरों में दाखिल कर सक़ते हैं और लोगों का बुना हुआ कपड़ा लेकर उसे बेच सकते हैं।

अगर वे एसा न करें तो भी लोग खुद मशीनों का कपड़ा इस्तेमाल करना बन्द कर सकते हैं।

पाठक: यह तो कपड़े के बारे में हुआ। लेकिन यंत्र की बनी तो अनेक चीजें हैं। वे चीजें या तो हमें परदेश से लेनी होंगी या एसे यंत्र हमारे देश में दाखिल करने होंगे।

संपादक: सचमुच हमारे देव (मूर्तियाँ) भी जर्मनी के यंत्रों में बनकर आते हैं; तो फिर दियासलाई या आलपिन से लेकर काँच के झाड़-फानूस की तो बात हीं क्या? मेरा अपना जवाब तो एक हीं है। जब ये सब चीजें यंत्र से नहीं बनती थीं तब हिंदुस्तान क्या करता था? वैसा हीं वह आज भी कर सक़ता है। जब तक हम हाथ से आलपिन नहीं बनायेंगे तब तक उसके बिना हम अपना काम चला लेंगे। झाड़-फानूस को आग लगा देंगे। मिट्टी के दीये में तेल डालकर और हमारे खेत में पैदा हुई रूई की बत्ती बना कर दीया जलायेंगे। एसा करने से हमारी आँखें (खराब होने से) बचेंगी, पैसे बचेंगे और हम स्वदेशी रहेंगे, बनेंगे और स्वराज्य की धूनी जगायेंगे।

यह सारा काम सब लोग एक हीं समय में करेंगे या एक हीं समय में कुछ लोग यंत्र की सब चीजें छोड़ देंगे, यह संभव नहीं है। लेकिन अगर यह विचार सही होगा, तो हम हमेशा शोध-खोज करते रहेंगे और हमेशा थोड़ी-थोड़ी चीजें छोड़ते जायेंगे। अगर हम एसा करेंगे तो दूसरे लोग भी एसा करेंगे। पहले तो यह विचार जड़ पकड़े यह जरूरी है; बाद में उसके मुताबिक काम होगा। पहले एक हीं आदमी करेगा, फिर दस, फिर सौ—यों नारियल की कहानी की तरह लोग बढ़ते हीं जायेंगे। बड़े लोग जो काम करते हैं, उसे छोटे भी करते हैं और करेंगे। समझें तो बात छोटी और सरल है। आपको और मुझे दूसरों के करने की राह नहीं देखना है। हम तो ज्यों हीं समझ लें त्यों हीं उसे शुरू कर दें। जो नहीं करेगा वह खोयेगा। समझते हुए भी जो नहीं करेगा, वह निरा दंभी कहलायेगा।

पाठक: ट्रामगाड़ी और बिजली की बत्ती का क्या होगा?

संपादक: यह सवाल आपने बहुत देर से किया। इस सवाल में अब कोई जान नहीं रही। रेलने अगर हमारा नाश किया है, तो क्या ट्राम नहीं करती? यंत्र तो साँप का एसा बिल है, जिसमें एक नहीं बल्कि सैकड़ों साँप होते हैं। एक के पीछे दूसरा लगा हीं रहता है। जहाँ यंत्र होंगे वहाँ बड़े शहर होंगे। जहाँ बड़े शहर होंगे वहाँ ट्रामगाड़ी और रेलगाड़ी होगी। वहीं बिजली की बत्ती की जरूरत रहती है। आप जानते होंगे कि विलायत में भी देहातों में

बिजली की बत्ती या ट्राम नहीं है। प्रामाणिक { ईमानदार } वैद्य और डॉक्टर आपको बतायेंगे कि जहाँ रेलगाड़ी, ट्रामगाड़ी वगैरा साधन { जरिये } बढ़े हैं, वहाँ लोगों की तंदुरूस्ती गिरी हुई होती है। मुझे याद है कि यूरोप के एक शहर में जब पैसे की तंगी हो गई थी तब ट्रामों, वकीलों और डॉक्टरों की आमदनी घट गयी थी, लेकिन लोग तंदुरूस्ती हो गये थे।

यंत्र का गुण तो मुझे एक भी याद नहीं आता, जब कि उसके अवगुणों से मैं पूरी किताब लिख सकता हूँ।

पाठक: यह सारा लिखा हुआ यंत्र की मदद से छापा जाएगा और उसकी मदद से बाँटा जाएगा, यह यंत्र का गुण है या अवगुण?

संपादक: यह 'जहर की दवा जहर है' की मिसाल है। इसमें यंत्र का कोई गुण नहीं है। यंत्र मरते मरते कह जाता है कि 'मुझसे बचिए, होशियार रहिये; मुझसे आपको कोई फायदा नहीं होने का।' अगर एसा कहा जाय कि यंत्र ने इतनी ठीक कोशिश की, तो यह भी उन्हीं के लिए लागू होता है जो यंत्र की जाल में फँसे हुए हैं।

लेकिन मूल बात न भूलियेगा। मन में यह तय कर लेना चाहिए कि यंत्र खराब चीज है। बाद में हम उसका धीरे-धीरे नाश करेंगे। एसा कोई सरल { आसान, सीधा }, रास्ता कुदरत ने हीं बनाया नहीं है कि जिस चीज की हमें इच्छा हो वह तुरन्त मिल जाय। यंत्र के ऊपर हमारी मीठी नज़र के बजाय जहरीली नज़र पड़ेगी, तो आखिर वह जाएगा हीं।

---

१. अनारम्भो हि कार्यणाम् प्रथमं बुद्धिलक्षणम्,
आरब्धस्यान्तगमनम् द्वितीयं बुद्धिलक्षणम्।

२०. छुटकारा

पाठक: आपके विचारों से एसा लगता है कि आप एक तीसरा हीं पक्ष कायम करना चाहते हैं। आप एक्स्ट्रीमिस्ट भी नहीं हैं और मोडरेट भी नहीं हैं।

संपादक: यहाँ आपकी भूल होती है। मेरे मन में तीसरे पक्ष का कोई खयाल नहीं है। सबके विचार एक से नहीं रहते। मोडरेटों में भी सब एक हीं विचार के हैं, एसा नहीं मानना चाहिए। जिसे (लोगों की) सेवा हीं करनी है, उसके लिए पक्ष कैसा? मैं तो मोडरेटों की सेवा करूँगा और एक्स्ट्रीमिस्टों की भी करूँगा। जहाँ उनके विचार से मेरी राय अलग पड़ेगी वहाँ मैं उन्हें नम्रता से बताऊँगा और अपना काम करता चलूँगा।

पाठक: अगर आप दोनों से कहना चाहें तो क्या कहेंगे?

संपादक: एक्स्ट्रीमिस्टों से मैं कहूँगा कि आपका हेतु हिंदुस्तान के लिए स्वराज्य हासिल करने का है। स्वराज्य आपकी कोशिश से मिलनेवाला नहीं है। स्वराज्य तो सबको अपने लिए पाना चाहिए—और सबको उसे अपना बनाना चाहिए। दूसरे लोग जो स्वराज्य दिला दें वह स्वराज्य नहीं है, बल्कि परराज्य है। इसलिए सिर्फ अंग्रेज़ों को बाहर निकाला कि आपने स्वराज्य पा लिया, एसा अगर आप मानते हों तो वह ठीक नहीं है। सच्चा स्वराज्य जो मैंने पहले बताया वही होना चाहिए। उसे आप गोला-बारूद से कभी नहीं पायेंगे। गोला-बारूद हिंदुस्तान को सधेगा नहीं। इसलिए सत्याग्रह पर हीं भरोसा रखिए। मन में एसा शक भी पैदा न होने दीजिये कि स्वराज्य पाने के लिए हमें गोला-बारूद की जरूरत है।

मोडरेटों से मैं कहूँगा कि हम खाली आजिज़ी करना चाहें, यह तो हमारी हीनता { कमी } होगी। उसमें हम अपना हलकापन कबूल करते हैं। 'अंग्रेजों से संबंध रखना हमारे लिए जरूरी है' – एसा कहना हमारे लिए, ईश्वर के चोर बनने जैसा हो जाता है। हमें ईश्वर के सिवा और किसी की जरूरत है, एसा कहना ठीक नहीं है। और साधारण विचार करने से भी हमें लगेगा कि 'अंग्रेज़ों के बिना आज तो हमारा काम चलेगा हीं नहीं.' एसा कहना अंग्रेजों को अभिमानी बनाने जैसा होगा।

अंग्रेज़ बोरिया-बिस्तर बाँधकर अगर चले जायेंगे, तो हिंदुस्तान अनाथ हो जाएगा एसा नहीं मानना चाहिए। अगर वे गये तो संभव है कि जो लोग उनके दबाव से चुप रहें

होंगे वे लड़ेंगे। फोड़े को दबाकर रखने से कोई फायदा नहीं। उसे तो फूटना हीं चाहिए। इसलिए अगर हमारे भाग में आपस में लड़ना हीं लिखा होगा तो हम लड़ मरेंगे। उसमें कमज़ोर को बचाने के बहाने किसी दूसरे को बीच में पड़ने की जरूरत नहीं है। इसी से तो हमारा सत्यानाश हुआ है। इस तरह कमज़ोर को बचाना उसे और भी कमज़ोर बनाने जैसा है। मोडरेटों को इस बात पर अच्छी तरह विचार करना चाहिए। इसके बिना स्वराज्य नहीं प्राप्त हो सक़ता। में उन्हें एक अंग्रेज़ पादरी के शब्दों की याद दिलाऊँगा: "स्वराज्य में अंधाधुंधी बरदाश्त की जा सकतीं है, लेकिन परराज्य की व्यवस्था (बन्दोबस्त) हमारी कंगाली को बताती है।" सिर्फ उस पादरी के स्वराज्य का और हिंदुस्तान के स्वराज्य का अर्थ अलग है। हम किसी का भी जुल्म या दबाव नहीं चाहते – चाहे वह गोरा हो या हिंदुस्तानी हो। हम सबको तैरना सीखना और सिखाना है।

अगर एसा हो तो एक्स्ट्रीमिस्ट और मोडरेट दोनों मिलेंगे—मिल सकेंगे – दोनों को मिलना चाहिए; दोनों को एक-दूसरे का डर रखने की या अविश्वास करने की जरूरत नहीं है।

पाठक: इतना तो आप दोनों पक्षों से कहेंगे। परन्तु अंग्रेज़ों से क्या कहेंगे?

संपादक: उनसे मैं विनय से कहूँगा कि आप हमारे राजा जरूर हैं। आप अपनी तलवार से हमारे राजा हैं या हमारी इच्छा से, इस सवाल की चर्चा मुझे करने की जरूरत नहीं। आप हमारे देश में रहें इसका भी मुझे द्वेष { डाह, इर्ष्या, बैर } नहीं है। लेकिन राजा होते हुए भी आपको हमारे नौकर बनकर रहना होगा। आपका कहा हमें नहीं, बल्कि हमारा कहा आपको करना होगा। आज तक आप इस देश से जो धन ले गये, वह भले आपने हजम कर लिया। लेकिन अब आगे आपका एसा करना हमें पसन्द नहीं होगा। आप हिंदुस्तान में सिपाहगिरी करना चाहें तो रह सक़ते हैं। हमारे साथ व्यापार करने का लालच आपको छोड़ना होगा। जिस सभ्यता की आप हिमायत करते हैं, उसे हम नुकसानदेह मानते हैं। अपनी सभ्यता को हम आपको सभ्यता से कहीं ज्यादा ऊँची समझते हैं। आपको भी एसा लगे तो उसमें आपका लाभ हीं है। लेकिन एसा न लगे तो भी आपको, आपकी कहावत[१] के मुताबिक, हमारे देश में हिंदुस्तानी होकर रहना होगा। आपको एसा कुछ नहीं

करना चाहिए, जिससे हमारे धर्म को बाधा पहुँचे। राजकर्ता होने के नाते आपका फर्ज है कि हिंदुओं की भावना का आदर करने के लिए आप गाय का मांस खाना छोड़ दें और मुसलमानों के खातिर बुरे जानवर-(सूअर)का मांस खाना छोड़ दें। हम दब गये थे इसलिए बोल नहीं सके, लेकिन आप एसा न समझें कि आपके इस बरताव से हमारी भावनाओं को चोट नहीं पहुँची है। हम स्वार्थ या दूसरे भय से आज तक कह नहीं सके, लेकिन अब यह कहना हमारा फर्ज हो गया है। हम मानते हैं कि आपकी कायम की हुई शालाएँ और अदालते हमारे किसी काम की नहीं हैं। उनके बजाय हमारी पुरानी असली शालाएँ और अदालते हीं हमें चाहिए।

हिंदुस्तान की आम भाषा अंग्रेज़ी नहीं बल्कि हिंदी है। वह आपको सीखनी होगी और हम तो आपके साथ अपनी भाषा में हीं व्यवहार करेंगे।

आप रेलवे और फौज के लिए बेशुमार रूपये खर्च करते हैं, यह हमसे देखा नहीं जाता। हमें उसकी जरूरत नहीं मालूम होती। रूस का डर आपको होगा, हमें नहीं है। रूसी आयेंगे तब हम उनसे निबट लेंगे; आप होंगे तो हम दोनों मिलकर उनसे निबट लेंगे। हमें विलायती या यूरोपी कपड़ा नहीं चाहिए। इस देश में पैदा होनेवाली चीजों से हीं हम अपना काम चला लेंगे। आपकी एक आँख मैन्चेस्टर पर और दूसरी हम पर रहें, यह अब नहीं पुसायेगा। आपका और हमारा स्वार्थ एक हीं है, इस तरह आप बरतेंगे तभी हमारा साथ बना रह सक़ता है।

आपसे यह सब हम बेअदबी से नहीं कह रहें हैं। आपके पास हथियार-बल है, भारी जहाजी सेना है। उसके खिलाफ वैसी हीं ताक़त से हम नहीं लड़ सक़ते। लेकिन आपको अगर ऊपर कही गई बात मंजूर न हो, तो आपसे हमारी नहीं बनेगी। आपकी मरजी में आये तो और मुमकिन हो तो आप हमें तलवार से काट सकते हैं, मरजी में आये तो हमें तोप से उड़ा सक़ते हैं। हमें जो पसंद नहीं है वह अगर आप करेंगे, तो हम आपकी मदद नहीं करेंगे; और बगैर हमारी मदद के आप एक कदम भी नहीं चल सकेंगे।

संभव है कि अपनी सत्ता के मद में हमारी इस बात को आप हँसी में उड़ा दें। आपका हँसना बेकार है, एसा आज शायद हम नहीं दिखा सकें। लेकिन अगर हममें कुछ

दम होगा, तो आप देखेंगे कि आपका मद { गरूर, घमंड } बेकार है और आपका हँसना (विनाश-काल की) विपरीत { उलटी } बुद्धि की निशानी है।

हम मानते हैं कि आप स्वभाव से धार्मिक राष्ट्र की प्रजा हैं। हम तो धर्मस्थान में हीं बसे हुए हैं। आपका और हमारा कैसे साथ हुआ, इसमें उतरना फिजूल है। लेकिन अपने इस संबंध का हम दोनों अच्छा उपयोग कर सकते हैं।

आप हिंदुस्तान में आनेवाले जो अंग्रेज़ हैं वे अंग्रेज़ प्रजा के सच्चे नमूने नहीं हैं; और हम जो आधे अंग्रेज़ जैसे बन गये हैं वे भी सच्ची हिंदुस्तानी प्रजा के नमूने नहीं कहे जा सक़ते। अंग्रेज़ प्रजा को अगर आपकी करतूतों के बारे में सब मालूम हो जाय, तो वह आपके कामों के खिलाफ हो जाय। हिंद की प्रजा ने तो आपके साथ संबंध थोड़ा हीं रखा है। आप अपनी सभ्यता को, जो दरअसल बिगाड़ करनेवाली है, छोड़ कर अपने धर्म की छानबीन करेंगे, तो आपको लगेगा कि हमारी माँग ठीक है। इसी तरह आप हिंदुस्तान में रह सक़ते हैं। अगर उस ढंग से आप यहाँ रहेंगे तो आपसे हमें जो थोड़ा सीखना है वह हम सीखेंगे और हमसे आपको जो बहुत सीखना है वह आप सीखेंगे। इस तरह हम (एक-दूसरे से) लाभ उठायेंगे और सारी दुनिया को लाभ पहुँचायेंगे। लेकिन यह तो तभी हो सक़ता है जब हमारे संबंध की जड़ धर्मक्षेत्र में जमे।

पाठक: राष्ट्र से आप क्या कहेंगे?

संपादक: राष्ट्र कौन?

पाठक: अभी तो आप जिस अर्थ में यह शब्द काम में लेते हैं उसी अर्थवाला राष्ट्र, यानी जो लोग यूरोप की सभ्यता में रंगे हुए हैं, जो स्वराज्य की आवाज़ उठा रहें हैं।

संपादक: इस राष्ट्र से मैं कहूँगा कि जिस हिंदुस्तानी को (स्वराज्य की) सच्ची खुमारी यानी मस्ती चढ़ी होगी, वही अंग्रेज़ों से ऊपर की बात कह सकेगा और उनके रोब से नहीं दबेगा।

सच्ची मस्ती तो उसी को चढ़ सकतीं है, जो ज्ञानपूर्वक – समझबूझकर – यह मानता हो कि हिंद की सभ्यता सबसे अच्छी है और यूरोप की सभ्यता चार दिन की चाँदनी है। वैसे सभ्यतायें तो आज तक कई हो गयीं और मिट्टी में मिल गयीं, आगे भी कई होंगी और मिट्टी में मिल जाएगीं।

सच्ची खुमारी उसी को हो सकतीं है, जो आत्मबल अनुभव करके शरीर-बल से नहीं दबेगा और निडर रहेगा तथा सपने में भी तोप-बल का उपयोग करने की बात नहीं सोचेगा।

सच्ची खुमारी उसी हिंदुस्तानी को रहेगी, जो आज की लाचार हालत से बहुत ऊब गया होगा और जिसने पहले से हीं जहर का प्याला पी लिया होगा।

एसा हिंदुस्तानी अगर एक हीं होगा, तो वह भी ऊपर की बात अंग्रेजों से कहेगा और अंग्रेज़ों को उसकी बात सुननी पड़ेगी।

ऊपर की माँग माँग नहीं है; वह हिंदुस्तानियों के मन की दशा को बताती है। माँगने से कुछ नहीं मिलेगा; वह तो हमें खुद लेना होगा। उसे लेने की हममें ताक़त होनी चाहिए। यह ताक़त उसीमें होगी:

१. जो अंग्रेज़ी भाषा का उपयोग लाचारी से हीं करेगा।

२. जो वकील होगा तो अपनी वकालत छोड़ देगा और खुद घर में चरखा चलाकर कपड़े बुन लेगा।

३. जो वकील होने के कारण अपने ज्ञान का उपयोग सिर्फ लोगों को समझाने और लोगों की आँखें खोलने में करेगा।

४. जो वकील होकर वादी-प्रतिवादी – मुद्दई और मुद्दालेह – के झगड़ों में नहीं पड़ेगा, अदालतों को छोड़ देगा और अपने अनुभव से दूसरों को अदालते छोड़ने के लिए समझायेगा।

५. जो वकील होते हुए भी जैसे वकालत छोड़ेगा वैसे न्यायाधीशपन { जजी } भी छोड़ेगा।

६. जो डॉक्टर होते हुए भी अपना पेशा छोड़ेगा और समझेगा कि लोगों की चमड़ी चोंथने के बजाय बेहतर है कि उनकी आत्मा को छुआ जाय और उसके बारे में शोध-खोज करके उन्हें तंदुरस्त बनाया जाय।

७. जो डॉक्टर होने से समझेगा कि खुद चाहे जिस धर्म का हो, लेकिन अंग्रेज़ी बैदकशालाओं – फार्मसियों – में जीवों पर जो निर्दयता की जाती है, वैसी निर्दयता से (बनी हुई दवाओं से) शरीर को चंगा करने के बजाय बेहतर है कि शरीर रोगी रहें।

८. जो डॉक्टर होने पर भी खुद चरखा चलायेगा और जो लोग बीमार होंगे उन्हें उनकी बीमारी का सही कारण बताकर उसे दूर करने के लिए कहेगा; निकम्मी दवाएँ देकर उन्हें गलत लाड़ नहीं लड़ायेगा। वह तो यही समझेगा कि निकम्मी दवाएँ न लेने से बीमार की देह अगर गिर भी जाय, तो उससे दुनिया अनाथ नहीं हो जाएगी, और यही मानेगा कि उसने बीमार पर सच्ची दया की है।

९. जो धनी होने पर भी धन की परवाह किये बिना अपने मन में होगा वही कहेगा और बड़े-से-बड़े सत्ताधीश की भी परवाह न करेगा।

१०. जो धनी होने से अपना रूपया चरखे चालू करने में खरचेगा और खुद सिर्फ स्वदेशी माल का इस्तेमाल करके दूसरों को भी एसा करने के लिए बढ़ावा देगा।

११. दूसरे हर हिंदुस्तानी की तरह जो यह समझेगा कि यह समय पश्चात्ताप { अफ़सोस, पछतावा } का, प्रायश्चित्त { कफ्फ़ारा } का और शोक { मातम } का है।

१२. जो दूसरे हर हिंदुस्तानी की तरह यह समझेगा कि अंग्रेज़ों का कसूर निकालना बेकार है। हमारे कसूर की वजह से वे हिंदुस्तान में आये, हमारे कसूर के कारण हीं वे यहाँ रहते हैं और हमारा कसूर दूर होगा तब वे यहाँ से चले जायेंगे या बदल जायेंगे।

१३. दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह जो यह समझेगा कि मातम के वक्त मौज-शौक नहीं हो सक़ते। जब तक हमें चैन नहीं है तब तक हमारा जेल में रहना या देश-निकाला भोगना हीं ठीक है।

१४. जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह यह समझेगा कि लोगों को समझाने के बहाने जेल में न जाने की खबरदारी रखना निरा मोह है।

१५. जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह यह समझेगा कि कहने से करने का असर अद्‌भुत होता है; हम निडर होकर जो मन में है वही कहेंगे और इस तरह कहने का जो नतीजा आये उसे सहेंगे, तभी हम अपने कहने का असर दूसरों पर डाल सकेंगे।

१६. जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह यह समझेगा कि हम दुःख सहन करके हीं बंधन यानी गुलामी से छूट सकेंगे।

१७. जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह समझेगा कि अंग्रेज़ों की सभ्यता को बढ़ावा देकर हमने जो पाप किया है, उसे धो डालने के लिए अगर हमें मरने तक भी अंदमान में रहना पड़े, तो वह कुछ ज्यादा नहीं होगा।

१८. जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह समझेगा कि कोई भी राष्ट्र दुःख सहन किये बिना ऊपर चढ़ा नहीं है। लड़ाई के मैदान में भी दुःख हीं कसौटी होता है, न कि दूसरे को मारना। सत्याग्रह के बारे में भी एसा हीं है।

१९. जो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह समझेगा कि यह कहना कुछ न करने के लिए एक बहाना भर है कि 'जब सब लोग करेंगे तब हम भी करेंगे'। हमें ठीक लगता है इसलिए हम करें, जब दूसरों को ठीक लगेगा तब वे करेंगे – यही करने का सच्चा रास्ता है। अगर मैं स्वादिष्ट { जायकेदार } भोजन देखता हूँ, तो उसे खाने के लिए दूसरे की राह नहीं देखता। ऊपर कहे मुताबिक प्रयत्न { कोशिश } करना, दुःख सहना यह स्वादिष्ट भोजन है। ऊबकर लाचारी से करना या दुःख सहना निरा बेगार है।

पाठक: सब एसा कब करेंगे और कब उसका अंत आयेगा?

संपादक: आप फिर भूलते हैं। सबकी न तो मुझे परवाह है, न आपको होनी चाहिए। 'आप अपना देख लीजिये, मैं अपना देख लूँगा'—यह स्वार्थ-वचन माना जाता है, लेकिन यह परमार्थ-वचन भी है। मैं अपना उजालूँगा—अपना भला करूँगा, तभी दूसरे का भला कर सकूंगा। अपना कर्तव्य { फर्ज } मैं कर लूँ, इसी में काम की सारी सिद्धियाँ समाई हुई हैं।

आपको बिदा करने से पहले फिर एक बार मैं यह दोहराने की इजाजत चाहता हूँ कि:

१, अपने मन का राज्य स्वराज्य है।

२, उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्मबल या करूणा-बल है।

३, उस बल को आजमाने के लिए स्वदेशी को पूरी तरह अपनाने की जरूरत है ।

४, हम जो करना चाहते हैं वह अंग्रेज़ों के लिए (हमारे मन में) द्वेष है इसलिए या उन्हें सजा देने के लिए नहीं करें, बल्कि इसलिए करें कि एसा करना हमारा कर्तव्य है। मतलब यह कि अंग्रेज़ अगर नमक-महसूल रद कर दें, लिया हुआ धन वापस कर दें, सब हिंदुस्तानियों को बड़े बड़े ओहदे दे दें और अंग्रेज़ी लश्कर हटा लें, तो हम उनकी मिलों का कपड़ा पहनेंगे, या अंग्रेज़ी भाषा काम में लायेंगे, या उनकी हुनर-कला का उपयोग करेंगे सो बात नहीं है। हमें यह समझना चाहिए कि वह सब दरअसल नहीं करने जैसा है, इसलिए हम उसे नहीं करेंगे।

मैंने जो कुछ कहा है वह अंग्रेज़ों के लिए द्वेष होने के कारण नहीं, बल्कि उनकी सभ्यता के लिए द्वेष होने के कारण कहा है।

मुझे लगता है कि हमने स्वराज्य का नाम तो लिया, लेकिन उसका स्वरूप हम नहीं समझे हैं। मैंने उसे जैसा समझा है वैसा यहाँ बताने की कोशिश की है।

मेरा मन गवाही देता है कि एसा स्वराज्य पाने के लिए मेरा यह शरीर समर्पित { भेंट, नजर किया हुआ } है।

---

१. Be a Roman in Rome - रोम में रोमन बनकर रहो।

परिशिष्ट

कुछ प्रमाणभूत ग्रंथ और प्रतिष्ठित व्यक्तियों की साक्षी

१. कुछ प्रमाणभूत ग्रंथ

हिंद स्वराज्य में प्रतिपादित विषय के अधिक अध्ययन के लिए सूचित पुस्तकें :

द किंगडम ओफ़ गोड इज़ विदिन यू — टॉल्स्टॉय

व्होट इज़ आर्ट? – टॉल्स्टॉय

द स्लेवरी ओफ़ अवर टाइम्स — टॉल्स्टॉय

द फर्स्ट स्टेप — टॉल्स्टॉय

हाउ शैल वी एस्केप? – टॉल्स्टॉय

लेटर टु ए हिंदू — टॉल्स्टॉय

द व्हाइट स्लेव्ज़ ओफ़ इंग्लैंड – शेरार्ड

सिविलाइज़ेशन, इट्स कोज़ एण्ड क्योर — कारपेन्टर

द फैलेसी ओफ़ स्पीड — टेलर

ए न्यू क्रूसेड — ब्लाउण्ट

ओन ध ड्यूटी ओफ़ सिविल डिसओबीडिएन्स — थोरो

लाइफ विदाउट प्रिन्सीपल — थोरो

अन्टु दिस लास्ट — रस्किन

ए जॉय फोर एवर — रस्किन

ड्यूटीज़ ओफ़ मैन — मैज़िनी

डिफेन्स एण्ड डैथ ओफ़ सोक्रेटीज़ — प्लेटो

पैराडोक्सेज़ ओफ़ सिविलाइज़ेशन — मैक्स नार्दयू

पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया — नौरोजी

इकानामिक हिस्ट्री ओफ़ इंडिया — दत्त

विलेज कम्युनिटीज़ — मेन

२. प्रतिष्ठित व्यक्तियों की साक्षी

श्री अल्फ्रेड वेब के मूल्यवान संग्रह से दिए जा रहें इन उद्धरणों से ज्ञात होगा कि भारत की प्राचीन सभ्यता को आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता से कुछ भी नहीं सीखना है :

जे सीमोर के,

ब्रिटिश संसद-सदस्य

यह लेखक भारत में बैंक-व्यवसायी रहा था (१८८३ में लिखित)

यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि हमारी स्थिति भारत में जंगली जातियों के बीच सभ्यता का प्रकाश लेकर पहुँचे हुए सभ्य लोगों की कभी नहीं रही। हम जब भारत पहुँचे तो हमने देखा कि वहाँ उन लोगों के पास एक प्राचीन सभ्यता है जो पिछले हजारों सालों में वहाँ रहनेवाली अतिशय बुद्धिमान जातियों के चरित्र में घुल-मिल गई है और उनकी सारी जरूरतों को पूरा करती है। उनकी यह सभ्यता सतही नहीं है, वह सर्वस्पर्शी और सर्वव्यापी है – उसने उस देश को न केवल समाज के राजनीतिक जीवन के गठन की पद्धतियाँ दी हैं बल्कि सामाजिक और कौटुंबिक जीवन की अत्यंत विविध और समृद्ध संस्थाएँ भी दी हैं। ये सारी संस्थाएँ कुल मिलाकर कितनी हितकारी हैं, यह बात हिंदू जाति के चरित्र पर उनके प्रभाव को देखकर जानी जा सकतीं है। इस देश की जनता के चरित्र में उसकी सभ्यता का यह हितकारी प्रभाव जितना स्पष्ट है उतना किसी अन्य देश की जनता में शायद हीं मिले। वे व्यापार में चतुर हैं, विचार और विवेचन की गहराइयों में जानेवाली तीक्ष्ण बुद्धि रखते हैं, मितव्ययी, धर्म-परायण, संयमशील, उदार, माता-पिता की आज्ञा माननेवाले, वृद्धों को आदर देनेवाले, कानून का पालन करनेवाले, व्यवहार में मीठे, असहायों के प्रति दयालु और आपत्ति आ पड़ने पर उसे धीरज से सहन करनेवाले हैं।

विक्टर कज़िन

(१७९२-१८६७)

(दर्शन के क्षेत्र में एक-धारा विशेष का प्रवर्तक)

दूसरी ओर जब हम पूर्व के और खास कर भारत के काव्य या दार्शनिक चिंतन के आंदोलनों का, जिनका प्रभाव अब यूरोप में भी फैलता दिखाई दे रहा है, ध्यान से अध्ययन करते हैं तो हमें वहाँ इतने अधिक और इतने गहरे सत्यों का साक्षात्कार होता है कि हम पूर्व की प्रतिभा के सामने घूँटने टेकने के लिए विवश हो जाते हैं और यह माने बिना नहीं रह सक़ते कि मनुष्य-जाति के पालने-जैसी यह भूमि उच्चतम दार्शनिक चिंतन की जन्मभूमि है। यूरोप की प्रतिभा जिन परिणामों तक पहुँचकर रुक गई है उनकी क्षुद्रता और पूर्व की प्रतिभा द्वारा प्रकाशित इन सत्यों के महदन्तर को देखकर सचमुच आश्चर्य होता है।

फ्रेडरिक मैक्समुलर

हमारा सारा पालन-पोषण यूनानियों, रोमनों और केवल एक हीं सामी जाति, अर्थात् यहूदियों की विचार-सम्पद् पर हुआ है। यदि मैं अपने-आपसे यह प्रश्न करूँ कि अपना आंतरिक जीवन अधिक संपूर्ण, अधिक व्यापक, अधिक सर्वस्पर्शी या एसा कहें सही अर्थो में अधिक मानवतापूर्ण बनाने के लिए जिस वस्तु की आवश्यकता है वह हम यूरोपवासियों को कहाँ से मिल सकतीं है तो मैं फिर भारत का हीं नाम लूँगा।

फ्रेडरिक वोन श्लेगेल

इससे इनकार नहीं किया जा सक़ता कि पूर्वकालीन भारतीयों को ईश्वर का सच्चा ज्ञान था। उनकी रचनाएँ उदात्त, प्रांजल और भव्य भावों और उद्गारों से परिपूर्ण हैं। उनकी गहराई और उनमें प्रतिबिम्बित भक्ति की भावना विविध भाषाओं के साहित्य में प्राप्त ईश्वर परक रचनाओं की गहराई या भक्ति-भावना से किसी भी प्रकार कम नहीं है। ... एसे राष्ट्रों में

जिनके पास अपना दर्शन और तत्त्वज्ञान है और जो इन विषयों के प्रति स्वाभाविक रुचि रखते हैं— समय की दृष्टि से भारत का स्थान पहला है।

एबे जे. ए. दुबोड़

मैसूर में ईसाई धर्म-प्रचारक: यह उद्धरण १५ दिसम्बर, १८२० को श्रीरंगपट्टम से लिखि गई एक चिट्ठी से लिया गया है।

विवाहित स्त्रियाँ अपने घरों में अपने अधिकार का उपयोग परिवार के सदस्यों में शांति और व्यवस्था बनाएँ रखने में करती हैं; और उनमें से अधिकांश इस महत्त्वपूर्ण कर्तव्य को जिस विवेक और दूरदर्शिता से निबाहती हैं उसकी तुलना यूरोप में मुश्किल से हीं मिलेगी। बड़े-बड़े लड़के और बड़ी-बड़ी लड़कियाँ और उनके बच्चों से निर्मित, तीस-तीस, चालीस-चालीस व्यक्तियों के परिवारों को मैंने किसी बड़ी-बूढ़ी स्त्री, उन बड़े लड़के-लड़कियों की माँ या सास की अध्यक्षता में इकट्ठे रहते देखा है। मैंने देखा कि यह वृद्धा अपने व्यवस्था-कौशल से, अपनी उन बहुओं से उनके स्वभाव के अनुसार व्यवहार करके, परिस्थितियों के अनुसार कभी कठोर होकर और कभी क्षमा और उदारता दिखाकर बरसों तक प्रतिकूल स्वभाववाली उन सारी स्त्रियों में शांति और सौहार्द रखने में सफल होती है। मैं पूछता हूँ कि क्या यह चीज़ एसी परिस्थितियों में हम अपने देशों में सिद्ध करने की उम्मीद कर सक़ते हैं? हमारे देशों में तो हम इतना भी नहीं कर पाते कि एक हीं घर में रहनेवाली दो स्त्रियाँ आपस में मिल-जुलकर रहें।

किसी सभ्य देश में ईमानदारी से किए जाने योग्य जो भी कार्य होते हैं उनमें शायद हीं कोई एसा हो जिसमें हिंदू स्त्रियाँ समुचित हिस्सा न लेती हों। घर-गृहस्थी की व्यवस्था और परिवार की सार-सँभाल के सिवा किसानों की पत्नियाँ और लड़कियाँ अपने पतियों और पिताओं को खेती-किसानी में मदद पहुँचाती हैं। व्यापार-धंधा करनेवालों की स्त्रियाँ उन्हें उनकी दूकान चलाने में मदद करती हैं। कितनी हीं स्त्रियाँ अपने बल पर दूकानें चलाती हैं; उन्हें अक्षर या अंकों का ज्ञान नहीं होता फिर भी वे अपना हिसाब-किताब दूसरी

युक्तियों के द्वारा बहुत अच्छी तरह रखती हैं और व्यापारिक सौदे करने में वे पुरुषों से भी चतुर मानी जाती हैं।

जे. यंग

सेक्रेटरी, सेवोन मेकेनिक्स इंस्टिट्यूट

भारत में बसनेवाली ये जातियाँ नैतिक दृष्टि से दुनिया में शायद सबसे ज्यादा विशिष्ट हैं। उनके व्यक्तित्व और स्वभाव से नैतिक पवित्रता टपकती मालूम होती है जिसकी हम सराहना किए बिना नहीं रह सक़ते। गरीब वर्गों के बारे में यह बात खास तौरपर लागू होती है जो गरीबी से उत्पन्न अभावों के बावजूद सुखी और संतुष्ट दिखाई पड़ते हैं। वे प्रकृति के सच्चे बालक हैं और अपना जीवन कल की चिंता किए बिना और विधाता ने उन्हें रूखा-सूखा जो भी दे रखा है, उसके लिए उसका आभार मानते हुए, संतोष से बिताते हैं। स्त्री और पुरुष मज़दूरों को दिन-भर की कड़ी मज़दूरी के बाद, जो कभी-कभी तो सूर्योदय से सूर्यास्त तक चलती रहती है, शाम के समय घर वापस आते हुए देखिए तो आपको विस्मय होगा। लगातार कड़ी मेहनत करने के फलस्वरूप होनेवाली थकान के बावज़ूद वे लोग ज्यादातर खुश नज़र आते हैं, उनके हाथ-पाँवों में तब भी सजीवता होती है, आपस में उत्साहपूर्वक बातचीत करते होते हैं और बीच-बीच में किसी गीत की कड़ी गुँजा उठते हैं। किंतु जिन्हें वे अपना घर कहते हैं उन झोंपड़ों में पहुँचने के बाद उन्हें मिलता क्या है? भोजन के नाम पर थोड़ा-सा चावल और सोने के लिए मिट्टी का फर्श। भारतीय घरों में पारिवारिक सौहार्द तो सामान्यत: मिलता हीं है। भारत में प्रचलित विवाह-संबंध की रीति का खयाल किया जाए तो वह कुछ अजीब-सी मालूम होती है क्योंकि विवाह संबंध जोड़ने का काम वहाँ माता-पिता करते हैं। अधिकतर घर-परिवार हर तरह से सुसंपन्न श्रेष्ठ वैवाहिक जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसका कारण शायद उनके शास्त्रों की शिक्षा और वैवाहिक कर्तव्यों के विषय में उनके महान आदेश हैं। लेकिन यह कहने में भी कोई अत्युक्ति नहीं कि पति सामान्यत: अपनी पत्नियों से गहरा प्रेम करते हैं और अधिकांश पत्नियाँ पति के प्रति अपने कर्तव्यों के बारे में बहुत ऊँचे आदर्श रखती हैं।

कर्नल टामस मनरो

(भारत में ३१ वर्ष तक सरकारी नौकर)

खेती की अच्छी पद्धति, अद्वितीय वस्तु-निर्माण-कौशल, एसी सारी चीजें पैदा करने की क्षमता जिनसे सुविधाओं में या सुखोपभोग में वृद्धि होती हो, लिखना-पढ़ना और गणित आदि सिखाने के लिए हर एक गाँव में पाठशालाएँ, अभ्यागत का स्वागत-सत्कार करने की सर्वसामान्य प्रथा और एक-दूसरे के प्रति प्रेम और सद्भाव का गुण और सबसे बढ़कर स्त्रीजाति के प्रति विश्वास, आदर और कोमलता का व्यवहार—यदि इन्हें किसी जाति के सभ्य होने का चिह्न माना जाए तो हिंदू जाति यूरोप के किसी भी राष्ट्र से घटकर नहीं है; और यदि इन दोनों देशों के बीच सभ्यता का लेन-देन होता है तो मुझे निश्चय है कि इस देश से हम जो भी लेंगे उससे लाभ हीं होगा।

सर विलियम वेडरबर्न, बैरिस्टर

भारतीय गाँव इस प्रकार सदियों तक राजनीतिक अव्यवस्था की बाढ़ रोकने वाली दीवार और सादे, घरेलू और सामाजिक गुणों का धाम रहा है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि तत्ववेत्ताओं और इतिहास-लेखकों ने इस प्राचीन संस्था की हृदय से सराहना की है। ग्राम-संस्था स्वाभाविक सामाजिक इकाई और ग्राम-जीवन का श्रेष्ठ नमूना है : स्वयंपूर्ण, उद्योगशील, शांति-प्रेमी और शब्द के उत्तम अर्थ में प्राचीनता-प्रेमी। ... मेरा खयाल है कि आप मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि भारतीय गाँव के सामाजिक और घरेलू जीवन की इस झलक में एसा बहुत-कुछ है जो सुहावना भी है और लुभावना भी। वह मनुष्य की जीवन पद्धति का एक निर्दोष और सुखी नमूना है। इसके सिवा, उसके व्यावहारिक परिणाम भी बहुत अच्छे रहें हैं।

अन्य प्रस्तावनाएँ

टिप्पण

हिंसा की विचारधारा को हमें साधारणतया प्रतीत होता है उससे अधिक अनुमोदन प्राप्य है। हिंसा के हिमायती दो वर्ग में विभाजित हैं। अल्प और अल्पतम होता एक समुदाय हिंसा में मानता है और उस पर आचरण करने को तत्पर होता है। दूसरा एक विशाल वर्ग हमेशा से रहा है जो हिंसा में आस्था तो रखता है, पर, हाल के आंदोलन की निष्फलता के कटु अनुभव के पश्चात्, उनकी यह आस्था आचरण में परिवर्तित नहीं होती। कार्यसिद्धि के लिए जबरदस्ती सिवा दूसरा मार्ग उनके पास नहीं होता। हिंसा के प्रति उनका दृढ़ इतबार उन्हें अन्य किसी काम करने से या भोग देने के रास्ते पर चलने से रोकता है। यह दोनों हीं बातें भारी आपत्तिपूर्ण हैं।

जब तक हम हिंसा के तमाम स्वरूपों को तिलांजलि नहीं दे देते और अहिंसक परिबलों को अपना चालकबल नहीं बनने देते तब तक अपनी यह मातृभूमि के नवनिर्माण की आशा मिथ्या है। हिंसाचार के नकार की आवश्यकता जितनी आज है इतनी पहले कभी न थी। इस ध्येयसिद्धि के लिए गांधीजी के यह विख्यात पुस्तक का प्रकाशन और उसके विशाल प्रचार से बेहतर मार्ग और क्या हो सक़ता है?

इस पुस्तक के प्रकाशन की बिनती का सहर्ष स्वीकार कर गणेश एन्ड कंपनी ने उच्च राष्ट्रभावना दिखाई है।

सत्याग्रह सभा,
मद्रास, ६-६-'१९
[अंग्रेज़ी से]

च. राजगोपालाचार
[हिंद में पहला अंग्रेज़ी संस्करण,
मद्रास: गणेश एन्ड कंपनी, १९१९]

उपोद्घात

लोर्ड लोधियन जब सेवाग्राम आये थे तब उन्होंने मुझसे *हिंद स्वराज्य* की नकल मांगी थी। उन्होंने कहा था: 'गांधीजी आजकल जो कुछ भी कह रहें हैं वह इस छोटी सी किताब में बीज के रूप में है, और गांधीजी को ठीक से समझने के लिए यह किताब बार-बार पढ़नी चाहिए।'

अचरज की बात यह है कि उसी अरसे में श्रीमती सोफिया वाड़िया ने *हिंद स्वराज्य* के बारे में एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने हमारे सब मंत्रियों से, धारासभा के सदस्यों से, गोरे और भारतीय सिविलियनों से, इतना हीं नहीं, आज के लोक-शासन के अहिंसक प्रयोग की सफलता चाहनेवाले हर एक नागरिक से यह किताब बार-बार पढ़ने की सिफारिश की थी। उन्होंने लिखा था:

> अहिंसक आदमी अपने हीं घर में तानाशाही कैसे चला सक़ता है? वह शराब कैसे बेच सक़ता है? अगर वह वकील हो तो अपने मुवक्किल को अदालत में जाकर लड़ने की सलाह कैसे दे सक़ता है? इन सारे सवालों का जवाब देते समय बहुत हीं महत्त्व के राजनीतिक सवालों का विचार करना जरूरी हो जाता है। *हिंद स्वराज्य* में इन प्रश्नों की सिद्धान्त की दृष्टि से चर्चा की गई है। इसलिए वह पुस्तक लोगों में ज्यादा पढ़ी जानी चाहिए और उसमें जो कहा गया है उसके बारे में लोकमत तैयार करना चाहिए।

श्रीमती वाड़िया की बिनती ठीक वक्त पर की गई है। १९०९ में गांधीजी ने विलायत से लौटते हुए जहाज़ पर यह पुस्तक लिखी थी। हिंसक साधनों में विश्वास रखनेवाले कुछ भारतीयों के साथ जो चर्चाएं हुई थीं, उन पर से उन्होंने मूल पुस्तक गुजराती में लिखी थी और *इंडियन ओपीनियन* नामक साप्ताहिक में सिलसिलेवार लेखों में उसे प्रगट किया गया था। बाद में उसे पुस्तक के रूप में प्रगट किया गया और बम्बई सरकार ने उसे जब्त किया। गांधीजी ने मि. कैलनबैक के लिए उस किताब का अंग्रेज़ी में जो अनुवाद किया था, उसे बम्बई सरकार के हुक्म के जवाब के रूप में प्रकाशित किया गया। गोखले जी १९१२ में जब दक्षिण अफ्रीका गये तब उन्होंने वह अनुवाद देखा। उन्हें उसका मजमून इतना

अनगढ़ लगा और उसके विचार एसे जल्दबाज़ी में बने हुए लगे कि उन्होंने भविष्यवाणी की कि गांधीजी एक साल भारत में रहने के बाद खुद हीं उस पुस्तक का नाश कर देंगे। गोखलेजी की वह भविष्यवाणी सच नहीं निकली। १९२१ में गांधीजी ने उस पुस्तक के बारे में लिखते हुए कहा था:

> वह द्वेषधर्म की जगह प्रेमधर्म सिखाती है; हिंसा की जगह आत्मबलिदान को रखती है; पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है। उसमें से मैंने सिर्फ एक हीं शब्द-और वह एक महिला मित्र की इच्छा को मान कर रद किया है। उसे छोड़कर कुछ भी फेरबदल नहीं किया है। इस किताब में आधुनिक { आज की } सभ्यता की सख्त टीका की गई है। यह १९०९ में लिखी गई थी। इसमें मैंने जो मान्यता प्रगट की है, वह आज पहले से ज्यादा मजबूत बनी है।... लेकिन मैं पाठकों को एक चेतावनी देना चाहता हूँ। वे एसा न मान लें कि इस किताब में जिस स्वराज्य की तसवीर मैंने खड़ी की है, वैसा स्वराज्य कायम करने के लिए आज मेरी कोशिशें चल रही हैं, मैं जानता हूँ कि अभी हिंदुस्तान उसके लिए तैयार नहीं है। एसा कहने में शायद ढिठाई का भास हो, लेकिन मुझे तो पक्का विश्वास है। उसमें जिस स्वराज्य की तसवीर मैंने खींची है, वैसा स्वराज्य पाने की मेरी निजी कोशिश जरूर चल रही है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि आज की मेरी सामूहिक { आम } प्रवृत्ति का ध्येय तो हिंदुस्तान की प्रजा की इच्छा के मुताबिक पार्लियामेन्टरी ढंग का स्वराज्य पाना है।

१९३८ में भी गांधीजी को कुछ जगहों पर भाषा बदलने के सिवा और कुछ फेरबदल करने जैसा नहीं लगा। इसलिए यह किताब किसी भी प्रकार की काट-छांट के बिना मूल रूप में हीं फिर से प्रकाशित की जाती है।

लेकिन इसमें बताये हुए स्वराज्य के लिए हिंदुस्तान तैयार हो या न हो, हिंदुस्तानियों के लिए यही उत्तम { सबसे अच्छा } है कि वे इस बीजरूप ग्रंथ का अध्ययन करें। सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों के स्वीकार से अंत में क्या नतीजा आयेगा, उसकी तसवीर इसमें

है। इसे पढ़कर उन सिद्धान्तों को स्वीकार करना चाहिए या उनका त्याग, यह तो पाठक हीं तय करें।

वर्धा, २-२-'३८ **महादेव हरिभाई देसाई**

[अंग्रेज़ी के गुजराती अनुवाद से]

[नवजीवन द्वारा पहला अंग्रेज़ी संस्करण, अहमदाबाद, १९३८]

संदेश : *आर्यन पाथ* को

जिन सिद्धांतों के पक्षपोषण { ताईद } के लिए *हिंद स्वराज* लिखा गया,[१] आप उनका प्रचार कर रहें हैं, यह मेरे लिए बड़ी खुशी की बात है। अंग्रेज़ी संस्करण { एडिशन } मूल गुजराती पुस्तक का अनुवाद है। अगर इसे फिर से लिखना पड़े तो हो सक़ता है, इसकी भाषा में मैं जहाँ-तहाँ कुछ परिवर्तन करूँ। लेकिन तब से मेरे जीवन के जो तीस कर्म-संकुल वर्ष बीते हैं, उनमें मेरे देखने में एसा कुछ नहीं आया जिसके आधार पर मैं इस पुस्तिका में प्रतिपादित विचारों में कोई परिवर्तन करूँ। पाठक यह याद रखें कि इसमें कुछ कार्यकर्ताओं के साथ – जिनमें से एक तो पक्का विप्लववादी { एनार्किस्ट } था— मेरी जो बातचीत हुई, उसको हीं ईमानदारी के साथ लिपिबद्ध किया गया है। उन्हें यह भी याद रखना चाहिए कि दक्षिण अफ्रिका में रहनेवाले भारतीयों के जीवन में जो एक सड़ाँघ आ जाने का खतरा पैदा हो गया था, उसे भी इस पुस्तक ने रोक दिया। और पाठक चाहें तो इस राय के मुकाबले दूसरे पलड़े पर मेरे एक प्रिय मित्र की (अफसोस कि अब वे हमारे बीच नहीं रहें) इस राय को रख सक़ते हैं कि यह तो एक मूर्ख व्यक्ति की कृति है।[२]

सेगाँव **मो. क. गांधी**

जुलाई १४, १९३८

[अंग्रेज़ी के गुजराती अनुवाद से]

[दूसरी संवर्धित अंग्रेज़ी आवृत्ति, नवजीवन, अहमदाबाद, १९३९]

---

१. हिंद स्वराज पर सितम्बर में आर्यन पाथ का एक विशेषांक निकला था। उसमें फ्रैड्रिक सोडी, जी डी एच कोल, सी डेलिसल बर्न्स, जोन मिडिलटन मरी, ह्यूग आइ' आनसन फोसेट, गेराल्ड हर्ड और इरेन रॅथबोन जैसे पाश्चात्य विचारकों के लेख थे। यद्यपि उनमें से कोई भी हिंद स्वराज में प्रतिपादित मत से पूर्णतया सहमत नहीं था, फिर भी सभी ने उस कृति को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना था।

२. देखिए 'उपोद्घात' पृ. १२३

नई आवृत्ति की प्रस्तावना

[*हिंद स्वराज्य* की यह जो नई आवृत्ति प्रकाशित होती है, उसके दीबाचे के तौर पर *आर्यन पाथ* मासिक के *हिंद स्वराज्य* अंक की जो समालोचना मैंने *हरिजन* में अंग्रेज़ी में लिखी थी, उसका तरजुमा देना यहां नामुनासिब नहीं होगा। यह सही है कि *हिंद स्वराज्य* की पहली आवृत्ति में गांधीजी के जो विचार दिखाये गये हैं, उनमें कोई फेरबदल नहीं हुआ है। लेकिन उनका उत्तरोत्तर { लगातार } विकास { खिलना } तो हुआ हीं है। मेरे नीचे दिये हुए लेख में उस विकास के बारे में कुछ चर्चा की गई है। उम्मीद है कि उससे गांधीजी के विचारों को ज्यादा साफ समझने में मदद होगी।

वर्धा, ११-१२-१९३८ **– म. ह. दे.]**

महत्त्व का प्रकाशन

आर्यन पाथ मासिक ने अभी अभी *हिंद स्वराज्य* अंक प्रकाशित किया है। जिस तरफ एसा अंक { नंबर } निकालने का विचार अनोखा है, उसी तरह उसका रूप-रंग भी बढ़िया है। इसका प्रकाशन श्रीमती सोफिया वाड़िया के भक्तिभाव-भरे श्रम का आभारी है। उन्होंने *हिंद स्वराज्य* की नकलें परदेश में अपने अनेक मित्रों को भेजी थीं और उनमें जो मुख्य थे उन्हें उस पुस्तक के बारे में अपने विचार लिख भेजने के लिए कहा था। खुद श्रीमती वाड़िया ने तो उस पुस्तक के बारे में लेख लिखे हीं थे और ये विचार जाहिर किये थे कि उसमें भारतवर्ष के उजले भविष्य की आशा रही है। लेकिन उस पुस्तक में यूरोप की अंधाधुंधी को भी मिटाने की शक्ति है, एसा यूरोप के विचारकों और लेखक-लेखिकाओं से उन्हें

कहलाना था। इसलिए उन्होंने यह योजना { तरकीब } निकाली। उसका नतीजा अच्छा आया है। इस खास अंक में अध्यापक सोडी, कोल, डिलाइल बर्न्स, मिडलटन मरी, बेरेसफर्ड, ह्यू फोसेट, क्लोड हूटन, ज़िराल्ड हर्ड, कुमारी रैथबोन वगैरा अनेक नामी लेखक-लेखिकाओं के लेख छपे हैं। उनमें से कुछ तो शांतिवादी और समाजवादी के तौर पर मशहूर हैं। लेकिन जिनके विचार शांतिवाद और समाजवाद के खिलाफ हैं, एसे लोगों के लेख भी इस अंक में आये होते तो अंक कैसा होता! जो लेख दिये गये हैं उनकी व्यवस्था इस तरह की गई है कि 'शुरू के लेखों में जो आलोचनायें और उज्र आये हैं, उनमें से बहुतों के जवाब बाद के लेखों में आ जाते हैं।' लेकिन दो-एक टीकायें लगभग सब लेखकों ने की हैं, इसलिए पहले उनका विचार करना ठीक होगा। कुछ बातें एसी कही गई हैं, जिन्हें तुरन्त स्वीकार कर लेना चाहिए। अध्यापक सोडी ने लिखा है कि वे हाल में हीं हिंदुस्तान आये थे और यहाँ उन्होंने एसा कुछ भी नहीं देखा जिसे ऊपर-ऊपर से देखने पर एसा लगे कि *हिंद स्वराज्य* में बताये हुए सिद्धान्तों { उसूलों } को कुछ ज्यादा सफलता मिली है। यह बिलकुल सच बात है। एसी हीं सही बात मि. कोल ने कही है कि गांधीजी की 'सिर्फ अकेले की बात सोचनी हो तो वे एसे स्वराज्य के नजदीक इनसान जितना पहुँच सक़ता है उतना पहुँच हीं चुके हैं। लेकिन उसके अलावा एक और सवाल रहता है; वह यह कि इनसान इनसान के बीच जो खाई है, खुद अकेले अमुक आचरण करना और दूसरों को उनकी बुद्धि के मुताबिक आचरण करने में मदद करना – इन दोनों के बीच जो अंतर है उसे कैसे पाटा जाय? इस दूसरी चीज के लिए तो औरों के साथ रह कर, उनमें से एक बन कर, उनके साथ तादात्म्य – एकता साध कर मनुष्य को आचरण करना पड़ता है; एक हीं समय में अपना असली रूप और दूसरे का धारण किया हुआ रूप यानी व्यक्तित्व (जिसे खुद जाँच सके, जिसकी टीका-टिप्पणी कर सके और जिसकी कीमत आंक सके), एसे दो तरह के बरताव रखने पड़ते हैं। गांधीजी ने अपने आचरण की साधना को आखिरी हद तक पहुँचाया जरूर है, लेकिन इस दूसरे सवाल को, खुद को संतोष हो इस तरह, वे हल नहीं कर पाये हैं।' फिर जोन मिडलटन मरी कहते हैं वह भी सही है कि 'अहिंसा को अगर सिर्फ राजनीतिक { सियासी } दबाव के एक साधन के तौर पर इस्तेमाल किया जाय, तो उसकी

शक्ति जल्दी खतम होती है।' और फिर सवाल यह उठता है कि 'एसी अहिंसा को क्या सच्ची अहिंसा कहा जा सक़ता है?'

लेकिन यह सारी क्रिया लगातार विकास की क्रिया है। उस साध्य { मक़सद } की सिद्धि के लिए कोशिश करते करते मनुष्य साधन { जरिया } की संपूर्णता के लिए भी कोशिश करता रहता है। सैकड़ों बरस पहले बुद्ध और ईसा मसीह ने अहिंसा और प्रेम के सिद्धान्त का उपदेश किया था। इन सैकड़ों बरसों में इक्केदुक्के व्यक्तियों ने छोटे-छोटे और सीमित { महदूद } प्रश्नों में उसका प्रयोग किया है। गांधीजी के बारे में एक बात स्वीकार हो चुकी है, जिसका जिक्र करते हुए इस लेख-संग्रह { मजमुआ } में ज़िराल्ड हर्ड ने कहा है कि 'गांधीजी के प्रयोग में सारे जगत को दिलचस्पी है, और उसका महत्त्व { अहमियत } युगों तक कायम रहेगा। इसका कारण यह है कि उन्होंने समूह को लेकर या राष्ट्रीय पैमाने पर उसका प्रयोग करने की कोशिश की है।' उस प्रयोग की कठिनाइयाँ तो साफ हैं, लेकिन गांधीजी को भरोसा है कि इन मुसीबतों को पार करना नामुमकिन नहीं है। हिंदुस्तान में १९२१ में वह प्रयोग नामुमकिन मालूम हुआ और उसे छोड़ देना पड़ा। लेकिन जो बात उस समय नामुमकिन थी, वह १९३० में मुमकिन हुई। अब भी बहुत बार यह सवाल उठता है कि 'अहिंसक साधन का अर्थ क्या है?' उस शब्द का सब को मंजूर हो एसा अर्थ और उसकी मर्यादा { हद } तय करने और उसे चालू करने से पहले अहिंसा का लंबे अरसे तक प्रयोग और आचरण { अमल } करने की जरूरत है। पश्चिम के विचारक अकसर भूल जाते हैं कि अहिंसा के आचरण में सब से जरूरी और न टाली जा सकने वाली चीज प्रेम है; और शुद्ध निःस्वार्थ प्रेम मन की और शरीर की बेदाग – निष्कलंक शुद्धि के बिना संभव नहीं है और प्राप्त नहीं किया जा सक़ता।

हिंद स्वराज्य की प्रशंसा भरी समालोचना में सब लेखकों ने एक बात का जिक्र किया है: वह है गांधीजी का यंत्रों के बारे में विरोध।

समालोचक इस विरोध को नामुनासिब और अकारण { बिलावजह } मानते हैं। मिडलटन मरी कहते हैं: 'गांधीजी अपने विचारों के जोश में यह भूल जाते हैं कि जो चरखा उन्हें बहुत प्यारा है, वह भी एक यंत्र हीं है और कुदरत की नहीं लेकिन इनसान की बनायी

हुई एक अकुदरती – कृत्रिम चीज है। उनके उसूल के मुताबिक तो उसका भी नाश करना होगा।' डिलाइल बर्न्स कहते हैं: 'यह तो बुनियादी विचार-दोष है। उसमें छिपे रूप से यह बात सूचित की गई है कि जिस किसी चीज का बुरा उपयोग हो सक़ता है, उसे हमें नैतिक दृष्टि से हीन मानना चाहिए। लेकिन चरखा भी तो एक यंत्र हीं है। और नाक पर लगाया हुआ चश्मा भी आंख की मदद करने को लगाया हुआ यंत्र हीं है। हल भी यंत्र है। और पानी खींचने के पुराने से पुराने यंत्र भी शायद मानव-जीवन को सुधारने की मनुष्य की हजारों बरस की लगातार कोशिश के आखिरी फल होंगे।... किसी भी यंत्र का बुरा उपयोग होने की संभावना रहती है। लेकिन अगर एसा हो तो उसमें रही हुई नैतिक हीनता यंत्र की नहीं, लेकिन उसका उपयोग करने वाले मनुष्य की है।'

मुझे इतना तो कबूल करना चाहिए कि गांधीजी ने 'अपने विचारों के जोश में' यंत्रों के बारे में अनगढ़ भाषा इस्तेमाल की है और आज अगर वे इस पुस्तक को फिर से सुधारने बैठें तो उस भाषा को वे खुद बदल देंगे। क्यों कि मुझे यकीन है कि मैंने ऊपर समालोचकों के जो कथन दिये हैं उनका गांधीजी स्वीकार करेंगे; और जो नैतिक गुण यंत्र का इस्तेमाल करने वाले में रहें हैं, उन गुणों को उन्होंने यंत्र के गुण कभी नहीं माना। मिसाल के तौर पर १९२४ में उन्होंने जो भाषा इस्तेमाल की थी वह ऊपर दिये हुए दो कथनों की याद दिलाती है। उस साल दिल्ली में गांधीजी का एक भाई के साथ जो संवाद { बातचीत } हुआ था, वह मैं नीचे देता हूँ:

'क्या आप तमाम यंत्रों के खिलाफ़ हैं?' रामचन्द्रन् ने सरल भाव से पूछा।

गांधीजी ने मुस्कराते हुए कहा: वैसा मैं कैसे हो सक़ता हूँ, जब मैं जानता हूँ कि यह शरीर भी एक बहुत नाजुक यंत्र हीं है? खुद चरखा भी एक यंत्र हीं है, छोटी दांत-कुरेदनी { खरका } भी यंत्र है। मेरा विरोध यंत्रों के लिए नहीं है, बल्कि यंत्रों के पीछे जो पागलपन चल रहा है, उसके लिए है। आज तो जिन्हें मेहनत बचाने वाले यंत्र कहते हैं, उनके पीछे लोग पागल हो गये हैं। उनसे मेहनत जरूर बचती है, लेकिन लाखों लोग बेकार होकर भूखों मरते हुए रास्तों पर भटकते हैं। समय और श्रम की बचत तो मैं भी चाहता हूँ, परन्तु वह किसी खास वर्ग की नहीं, बल्कि सारी मानव-जाति की होनी चाहिए। कुछ गिने-गिनाये

लोगों के पास संपत्ति जमा हो एसा नहीं, बल्कि सब के पास जमा हो एसा मैं चाहता हूँ। आज तो करोड़ों की गरदन पर कुछ लोगों के सवार हो जाने में यंत्र मददगार हो रहें हैं। यंत्रों के उपयोग के पीछे जो प्रेरक कारण है वह श्रम की बचत नहीं है, बल्कि धन का लोभ है। आज की इस चालू अर्थ-व्यवस्था के खिलाफ मैं अपनी तमाम ताक़त लगा कर युद्ध चला रहा हूँ।'

रामचन्द्रन् ने आतुरता से पूछा: "तब तो, बापूजी, आप का झगड़ा यंत्रों के खिलाफ नहीं, बल्कि आज यंत्रों का जो बुरा उपयोग हो रहा हे उसके खिलाफ है?'

'जरा भी आनाकानी किये बिना मैं कहता हूँ कि 'हां'। लेकिन मैं इतना जोड़ना चाहता हूँ कि सबसे पहले यंत्रों की खोज और विज्ञान लोभ के साधन नहीं रहने चाहिए। फिर मजदूरों से उनकी ताक़त से ज्यादा काम नहीं लिया जाएगा, और यंत्र रूकावट बनने के बजाय मददगार हो जायेंगे। मेरा उद्देश्य { मक़सद } तमाम यंत्रों का नाश करने का नहीं है, बल्कि उनकी हद बांधने का है।'

रामचन्द्रन् ने कहा: 'इस दलील को आगे बढ़ाये तो उसका मतलब यह होता है कि भौतिक { दुनियावी } शक्ति से चलने वाले और भारी पेचीदा तमाम यंत्रों का त्याग करना चाहिए।'

गांधीजी ने मंजूर करते हुए कहा: त्याग करना भी पड़े। लेकिन एक बात मैं साफ करना चाहूँगा। हम जो कुछ करें उसमें मुख्य विचार इनसान के भले का होना चाहिए। एसे यंत्र नहीं होने चाहिए जो काम न रहने के कारण आदमी के अंगों को जड़ और बेकार बना दें। इसलिए यंत्रों को मुझे परखना होगा। जैसे, सिंगर की सीने की मशीन का मैं स्वागत करूंगा। आज की सब खोजों में जो बहुत काम की थोड़ी खोजें हैं, उनमें से एक यह सीने की मशीन है। उसकी खोज के पीछे अद्‌भुत इतिहास है। सिंगर ने अपनी पत्नी को सीने और बखिया लगाने का उकताने वाला काम करते देखा। पत्नी के प्रति रहें उसके प्रेम ने गैर-जरूरी मेहनत से उसे बचाने के लिए सिंगर को एसी मशीन बनाने की प्रेरणा की। एसी खोज करके उसने न सिर्फ अपनी पत्नी का हीं श्रम बचाया, बल्कि जो भी एसी सीने की मशीन खरीद सक़ते हैं उन सब को हाथ से सीने के उबाने वाले श्रम से छुड़ाया है।'

रामचन्द्रन् ने कहा: 'लेकिन सिंगर की सीने की मशीनें बनाने के लिए तो बड़ा कारखाना चाहिए और उसमें भौतिक शक्ति से चलने वाले यंत्रों का उपयोग करना हीं पड़ेगा।'

रामचन्द्रन् के इस विरोध में सिर्फ ज्यादा जानने की इच्छा हीं थी। गांधीजी ने मुस्कराते हुए कहा: 'हां, लेकिन मैं इतना कहने की हद तक समाजवादी तो हूँ हीं कि एसे कारखानों का मालिक राष्ट्र हो या जनता की सरकार की ओर से एसे कारखाने चलाये जायें। उनकी हस्ती नफे के लिए नहीं बल्कि लोगों के भले के लिए हो। लोभ की जगह प्रेम को कायम करने का उसका उद्देश्य हो। मैं तो यह चाहता हूँ कि मज़दूरों की हालत में कुछ सुधार हो। धन के पीछे आज जो पागल दौड़ चल रही है वह रूकनी चाहिए। मज़दूरों को सिर्फ अच्छी रोजी मिले, इतना हीं बस नहीं है। उनसे हो सके एसा काम उन्हें रोज मिलना चाहिए। एसी हालत में यंत्र जितना सरकार को या उसके मालिक को लाभ पहुंचायेगा, उतना हीं लाभ उसके चलाने वाले मज़दूर को पहुंचायेगा। मेरी कल्पना में यंत्रों के बारे में जो कुछ अपवाद हैं, उनमें से एक यह है। सिंगर मशीन के पीछे प्रेम था, इसलिए मानव-सुख का विचार मुख्य { खास } था। उस यंत्र का उद्देश्य है मानव-श्रम की बचत। उसका इस्तेमाल करने के पीछे मक़सद धन के लोभ का नहीं होना चाहिए, बल्कि प्रामाणिक रीति { ईमानदारी } से दया का होना चाहिए। मसलन, टेढ़े तकुवे को सीधा बनाने वाले यंत्र का मैं बहुत स्वागत करूंगा। लेकिन लुहारों का तकुवे बनाने का काम हीं खतम हो जाय, यह मेरा उद्देश्य नहीं हो सक़ता। जब तकुवा टेढ़ा हो जाय तब हर एक कातने वाले के पास तकुवा सीधा कर लेने के लिए यंत्र हो, इतना हीं मैं चाहता हूँ। इसलिए लोभ की जगह हम प्रेम को दें। तब फिर सब अच्छा हीं अच्छा होगा।'

मुझे नहीं लगता कि ऊपर के संवाद में गांधीजी ने जो कहा है, उसके बारे में इन आलोचकों में से किसी का सिद्धान्त { उसूल } की दृष्टि से विरोध हो। देह की तरह यंत्र भी, अगर वह आत्मा के विकास में मदद करता हो तो, और जितनी हद तक मदद करता हो उतनी हद तक हीं, उपयोगी है।

पश्चिम की सभ्यता के बारे में भी एसा हीं है। 'पश्चिम की सभ्यता मनुष्य की आत्मा की महाशत्रु है' – इस कथन का विरोध करते हुए मि. कोल लिखते हैं: 'मैं कहता हूँ कि स्पेन और एबिसीनिया के भयंकर संहार { कत्ल }, हमारे सिर पर हमेशा लटकने वाला भय, सब तरह की रिद्धि-सिद्धि पैदा करने की शक्ति मौजूद होने पर भी करोड़ों का दारिद्य, ये सब पश्चिम की सभ्यता के दूषण हैं, गंभीर दूषण { खराबिया } हैं। लेकिन वे कुदरती नहीं हैं, सभ्यता की जड़ नहीं हैं।... मैं यह नहीं कहता कि हम अपनी इस सभ्यता को सुधारेंगे; लेकिन वह सुधर हीं नहीं सकतीं, एसा मैं नहीं मानता। जो चीज़ें मानव की आत्मा के लिए जरूरी हैं, उनके साफ इनकार पर उस सभ्यता की रचना हुई है एसा मैं नहीं मानता !' बिलकुल सही बात है। और गांधीजी ने उस सभ्यता के जो दूषण बताये वे कुदरती नहीं थे, बल्कि उस सभ्यता की प्रवृत्तियों में रहें हुए दूषण थे; और इस पुस्तक में गांधीजी का मक़सद भारतीय सभ्यता की प्रवृत्तियां पश्चिम की सभ्यता की प्रवृत्तियों से कितनी भिन्न हैं यही दिखाने का था। पश्चिम की सभ्यता को सुधारना नामुमकिन नहीं है, मि. कोल की इस बात से गांधीजी पूरी तरह सहमत { हम राय } होंगे; उनको यह भी मंजूर होगा कि पश्चिम को पश्चिम के ढंग का हीं स्वराज्य चाहिए; वे आसानी से यह भी स्वीकार करेंगे कि वह स्वराज्य 'गांधी जैसे आत्म-निग्रह { खुद पर काबू रखनेवाले } वाले पुरूषों के विचार के अनुसार तो होगा, लेकिन वे पुरूष हमारे पश्चिम के ढंग के होंगे; और वह ढंग गांधी या हिंदुस्तान का नहीं, पश्चिम का अपना निराला हीं ढंग होगा |'

सिद्धान्त की मर्यादा

अध्यापक कोल ने नीचे की उलझन सामने रखी है:

> जब जर्मन और इटालियन विमानी स्पेन की प्रजा का संहार कर रहें हों, जब जापान के विमानी चीन के शहरों में हजारों लोगों को कत्ल कर रहें हों, जब जर्मन सेनाएँ आस्ट्रिया में घुस चुकी हों और चेकोस्लोवाकिया में घुस जाने की धमकियाँ दे रही हों, जब एबिसीनिया पर बम बरसाकर उसे जीत लिया गया हो, तब आज के एसे समय में क्या यह (अहिंसा का) सिद्धान्त टिक सकेगा? दो-एक बरस पहले मैं तमाम संजोगों में युद्ध का और मृत्युकारी हिंसा का विरोध करता था। लेकिन आज, युद्ध

के बारे में मेरे दिल में नापसंदगी और नफ़रत होने पर भी, इन कत्लेआमों – हत्याकांडों को रोकने के लिए मैं युद्ध का खतरा जरूर उठाऊँगा।

उनके मन में एक-दूसरे के विरोधी ये विचार कैसा सख्त संघर्ष मचा रहें हैं, यह नीचे की सतरों से जाहिर होता है। वे कहते हैं:

मैं युद्ध का खतरा जरूर उठाऊँगा, परन्तु अभी भी मेरा वह दूसरा व्यक्तित्व { शख़्सियत } इनसान की हत्या करने के विचार से घबराकर, चोट खाकर पीछे हटता है। मैं खुद तो दूसरे की जान लेने के बजाय अपनी जान देना ज्यादा पसन्द करूंगा। लेकिन अमुक संजोगों में खुद मर-मिटने के बजाय दूसरे की जान लेने की कोशिश करना कया मेरा फर्ज नहीं होगा? गांधी शायद जवाब देंगे कि जिसने व्यक्तिगत { अपना } स्वराज्य पाया है, उसके सामने एसा धर्मसंकट { पसोपेश, दुविधा } पैदा हीं नहीं होगा। एसा व्यक्तिगत स्वराज्य मैंने पाया है, यह मेरा दावा नहीं है। लेकिन खयाल कीजिये कि मैंने एसा स्वराज्य पा लिया है, तो भी उससे पश्चिम यूरोप में आज के समय मेरे लिए यह सवाल कुछ कम जोरदार हो जायेगा एसा मुझे विश्वास नहीं होता।'

मि. कोल ने जो संजोग बताये हैं, वे मनुष्य की श्रद्धा { अक़ीदा } की कसौटी जरूर करते हैं। लेकिन इसका जवाब गांधीजी अनेक बार दे चुके हैं, हालांकि उन्होंने अपना व्यक्तिगत स्वराज्य पूरी तरह पाया नहीं है; क्योंकि जब तक दूसरे देशबन्धुओं ने स्वराज्य नहीं पाया है, तब तक वे अपने पाये हुए स्वराज्य को अधूरा हीं मानते हैं। लेकिन वे श्रद्धा के साथ जीते हैं और अहिंसा के बारे में उनकी जो श्रद्धा है वह इटली या जापान के किये हुए कत्लेआमों की बात सुनते हीं डगमगाने नहीं लगती। क्योंकि हिंसा में से हिंसा के हीं नतीजे पैदा होते हैं; और एक बार उस रास्ते पर जा पहुंचे कि फिर उसका कोई अन्त हीं नहीं आता। 'चीन का पक्ष लेकर आपको लड़ना चाहिए' एसा कहने वाले एक चीनी मित्र को जवाब देते हुए *वार रेज़िस्टर* नामक पत्र में फिलिप ममफर्ड ने लिखा है:

आपकी शत्रु तो जापान की सरकार है; जापान के किसान और सैनिक आपके दुश्मन नहीं हैं। उन अभागे और अनपढ़ लोगों को तो मालूम भी नहीं कि उन्हें क्यों

लड़ने का हुक्म किया जाता है। फिर भी, अगर आप अपने देश के बचाव के लिए मौजूदा लश्करी तरीकों का उपयोग करेंगे, तो आपको इन बेकसूर लोगों को हीं – जो आपके सच्चे दुश्मन नहीं हैं उन्हीं को— मारना पड़ेगा। अहिंसा की जो रीति गांधीजी ने हिंदुस्तान में आजमाई, उसी के जरिये अगर चीन अपनी रक्षा करने की कोशिश करेगा – और गांधीजी की वह रीति चीन के महान धर्म-गुरूओं के उपदेश से बहुत ज्यादा मेल खाती है – तो मैं बेधड़क कहूँगा कि यूरोप के शस्त्रयुद्ध की रीति की नकल करने के बजाय इस अहिंसा की रीति से उसे बहुत ज्यादा सफलता मिलेगी। ...चीन की जनता, जो जगत की सब से ज्यादा शांतिप्रिय प्रजा है, जगत की किसी भी लड़ाकू प्रजा के बनिस्बत ज्यादा लंबे अरसे तक अपने को और अपनी संस्कृति को कायम रख सकी है, यह हकीकत हीं मानव-जाति के लिए एक सबक़ है। जो शूरवीर चीनी अपने देश के बचाव के लिए लड़ रहें हैं, उनके लिए हमें आदर नहीं है एसा आप न मानें। हम उनके त्याग और बलिदान की भारी कदर करते हैं और समझते हैं कि वे हम से भिन्न सिद्धान्तों में मानने वाले हैं। फिर भी हम तो मानते हैं कि हिंसा सब संजोगों में बुरी है और उसमें से अच्छे फल निकलना असंभव है। अहिंसा का पालन आपको तमाम दुःखों से उबार तो नहीं लेगा, लेकिन मैं मानता हूँ कि आपके सब शस्त्र-अस्त्रों और लश्करों के बनिस्बत अहिंसा एक अरसे के बाद आपके भावी विजेता के खिलाफ ज्यादा असरकारक साबित होगी; और सबसे ज्यादा महत्त्व { अहम } की बात तो यह है कि इससे आपकी प्रजा के आदर्श जीवित रहेंगे।

कुमारी रैथबोन ने एसी हीं एक समस्या { मसला, पहेली } रखी है। वे लिखती है :

'जालिम के सामने सिर झुका कर और अपनी अंदर की आवाज़ के विरूद्ध चल कर अगर छोटे मुलायम बच्चों और बच्चियों को बचाया जा सक़ता हो, तो इस दुनिया में एसा कौन आदमी – सामान्य या संतपुरूष – है, जो उनकी हत्या होने देगा?' गांधी इस सवाल का जवाब नहीं देते। उन्होंने यह सवाल उठाया तक नहीं है। ...इस बारे में ईसा मसीह का कहना ज्यादा स्पष्ट { साफ़ } है। ...उनके शब्द ये हैं: 'मुझ पर

श्रद्धा रखने वाले इन नन्हें मुन्नों के खिलाफ जो कोई हाथ उठाये, उसके गले में चक्की का पाट लटका कर उसे समुद्र के पानी में डुबो दिया जाय।' ... यों हमें इस बारे में गांधीजी के बनिस्बत ईसा मसीह की ओर से ज्यादा मदद मिलती है...।

मुझे लगता है, ईसा मसीह के वचन सिर्फ उनका पुण्य-प्रकोप { पाक गुस्सा } प्रकट करते हैं, और उन्होंने जो कदम उठाने की बात कही है, वह गुनहगारों को कोई और आदमी सजा करे इसलिए नहीं, बल्कि गुनहगार खुद अपने को प्रायश्चित्त { कफ़्फ़ारा } के तौर पर सजा दे इसलिए है। और क्या कुमारी रैथबोन को पक्का यकीन है कि जिसे वे ईसा का उपाय मानती हैं, उसे आजमाकर वे बालकों को मौत से बचा सकेंगी? गांधीजी ने यह सवाल उठाया हीं नहीं है, एसा उनका मानना सही नहीं है। उन्होंने यह सवाल उठाया है और उसका साफ़ साफ़ जवाब भी दिया है; जैसे १३०० बरस पहले उन अमर मुस्लिम शहीदों ने भी यह सवाल उठाया था और अपने काम से उसका जवाब दिया था। जालिम के सामने झुकने और अपनी अंतर-आत्मा को धोखा देने के बजाय अपने बीबी-बच्चों को भूखे-प्यासे तड़पते हुए मरने देना हीं उन्होंने ज्यादा पसन्द किया था; क्योंकि जालिम के सामने झुकने और अपनी अंतर-आत्मा को धोखा देने का परिणाम यही होता है कि जालिम को नये नये जुल्म गुजारने का बढ़ावा मिलता है।

लेकिन कुमारी रैथबोन ने भी *हिंद स्वराज्य* को 'बहुत भारी असरकारक पुस्तक' कहा है और लिखा है कि 'उसे पढ़कर, उसमें रही भारी प्रामाणिकता { ईमानदारी } को देखकर अपनी प्रामाणिकता की जांच करना मेरे लिए जरूरी हो गया है। लोगों से मेरी बिनती है कि वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें।'

आर्यन पाथ मासिक के संपादकों ने यह *हिंद स्वराज्य* अंक निकाल कर शांति और अहिंसा के कार्य की निर्विवाद { ख़सूसन्, बेशक } सेवा की है, एसा हमें कहना होगा।

हरिजन १०-९-१९३८ **महादेव हरिभाई देसाई**

[अंग्रेज़ी के गुजराती अनुवाद से]

[दूसरी संवर्धित अंग्रेज़ी आवृत्ति, नवजीवन, अहमदाबाद, १९३९]

दो शब्द

लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए गांधीजी ने रास्ते में जो संवाद लिखा और *हिंद स्वराज्य* के नाम से छपवाया, उसे आज पचास बरस हो गये।

दक्षिण अफ्रीका के भारतीय लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए सतत लड़ते हुए गांधीजी १९०९ में लंदन गये थे। वहां कई क्रांतिकारी स्वराज्य-प्रेमी भारतीय नवयुवक उन्हें मिले। उनसे गांधीजी की जो बातचीत हुई उसीका सार गांधीजी ने एक काल्पनिक संवाद में ग्रथित किया है। इस संवाद में गांधीजी के उस समय के महत्त्व के सब विचार आ जाते हैं। किताब के बारे में गांधीजी ने स्वयं कहा है कि 'मेरी राय में यह किताब एसी है कि यह बालक के हाथ में भी दी जा सकतीं है। यह द्वेषधर्म की जगह प्रेमधर्म सिखाती है; हिंसा की जगह आत्म-बलिदान को रखती है; पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है।' गांधीजी इस निर्णय पर पहुंचे थे कि पश्चिम के देशों में, यूरोप-अमेरिका में जो आधुनिक सभ्यता जोर कर रही है, वह कल्याणकारी नहीं है, मनुष्य-हित के लिए वह सत्यानाशकारी है। गांधीजी मानते थे कि भारत में और सारी दुनिया में प्राचीन काल से जो धर्म-परायण नीति-प्रधान सभ्यता चली आयी है वही सच्ची सभ्यता है।

गांधीजी का कहना था कि भारत से केवल अंग्रेज़ों को और उनके राज्य को हटाने से भारत को अपनी सच्ची सभ्यता का स्वराज्य नहीं मिलेगा। हम अंग्रेज़ों को हटा दें और उन्हीं की सभ्यता का और उन्हीं के आदर्श का स्वीकार करें तो हमारा उद्धार नहीं होगा। हमें अपनी आत्मा को बचाना चाहिए। भारत के लिखे-पढ़े चंद लोग पश्चिम के मोह में फंस गये हैं। जो लोग पश्चिम के असर तले नहीं आये हैं, वे भारत की धर्म-परायण नैतिक सभ्यता को हीं मानते हैं। उनको अगर आत्मशक्ति का उपयोग करने का तरीक़ा सिखाया जाय, सत्याग्रह का रास्ता बताया जाय, तो वे पश्चिमी राज्य-पद्धति का और उससे होने वाले अन्याय का मुक़ाबला कर सकेंगे तथा शस्त्रबल के बिना भारत को स्वतंत्र कर के दुनिया को भी बचा सकेंगे।

पश्चिम का शिक्षण और पश्चिम का विज्ञान अंग्रेज़ों के अधिकार के जोर पर हमारे देश में आये। उनकी रेलें, उनकी चिकित्सा और रूग्णालय, उनके न्यायालय और उनकी

न्यायदान-पद्धति आदि सब बातें अच्छी संस्कृति के लिए आवश्यक नहीं है, बल्कि विघातक हीं हैं – वगैरा बातें बिना किसी संकोच के गांधीजी ने इस किताब में दी हैं।

मूल किताब गुजराती में लिखी गयी थी। उसके हिंदुस्तान आते हीं बंबई सरकार ने आक्षेपार्ह बताकर उसे जब्त किया। तब गांधीजी ने सोचा कि *हिंद स्वराज* में मैंने जो कुछ भी लिखा है, वह जैसा का वैसा अपने अंग्रेज़ी जानने वाले मित्रों और टीकाकारों के सामने रखना चाहिए। उन्होंने स्वयं गुजराती *हिंद स्वराज* का अंग्रेज़ी अनुवाद किया और उसे छपाया। उसे भी बम्बई सरकार ने आक्षेपार्ह घोषित किया।

दक्षिण अफ्रीका का अपना सारा काम पूरा करके सन् १९१५ में गांधीजी भारत आये। उसके बाद सत्याग्रह करने का जब पहला मौका गांधीजी को मिला, तब उन्होंने बंबई सरकार के हुक्म के खिलाफ *हिंद स्वराज* फिर से छपवाकर प्रकाशित किया। बम्बई सरकार ने इसका विरोध नहीं किया। तब से यह किताब बम्बई सरकार ने राज्य में, सारे भारत में और दुनिया के गंभीर विचारकों के बीच ध्यान से पढ़ी जाती है।

स्व. गोखलेजी ने इस किताब के विवेचन को कच्चा कह कर उसे नापसन्द किया था और आशा की थी कि भारत लौटने के बाद गांधीजी स्वयं इस किताब को रद कर देंगे। लेकिन वैसा नहीं हुआ। गांधीजी ने एकाध सुधार कर के कहा कि आज मैं इस किताब को अगर फिर से लिखता, तो उसकी भाषा में जरूर कुछ सुधार करता। लेकिन मेरे मूलभूत विचार वही हैं, जो इस किताब में मैंने व्यक्त किये हैं।

गांधीजी के प्रति आदर और उनके विचारों के प्रति सहानुभूति रखने वाले दुनिया के बड़े बड़े विचारकों ने *हिंद स्वराज* के बारे में जो संमति प्रगट की है, उसका सार श्री महादेव देसाई ने नई आवृत्ति की अपनी सुन्दर प्रस्तावना में दिया हीं है।

अहिंसा का सामर्थ्य, यंत्रवाद का गांधीजी का विरोध और पश्चिमी सभ्यता तीनों के बारे में और सत्याग्रह की अंतिम भूमिका के बारे में भी पश्चिम के लोगों ने अपना मतभेद स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है।

गांधीजी के सारे जीवन-कार्य के मूल में जो श्रद्धा काम करती रही, वह सारी *हिंद स्वराज्य* में पायी जाती है। इसलिए गांधीजी के विचारसागर में इस छोटी सी पुस्तक का महत्त्व असाधारण है।

गांधीजी के बताये हुए अहिंसक रास्ते पर चल कर भारत स्वतंत्र हुआ। असहयोग, कानूनों का सविनय भंग और सत्याग्रह – इन तीनों कदमों की मदद से गांधीजी ने स्वराज्य का रास्ता तय किया। हम इसे चमत्कारपूर्ण घटना का त्रिविक्रम कह सकते हैं।

गांधीजी के प्रयत्न का वही हाल हुआ, जो दुनिया की अन्य श्रेष्ठ विभूतियों के प्रयत्नों का होता आया है।

भारत ने, भारत के नेताओं ने और एक ढंग से सोचा जाय तो भारत की जनता ने भी गांधीजी के द्वारा मिले हुए स्वराज्य-रूपी फल को तो अपनाया, लेकिन उनकी जीवन-दृष्टि को पूरी तरह अपनाया नहीं है। धर्मपरायण, नीति-प्रधान पुरानी संस्कृति की प्रतिष्ठा जिसमें नहीं है, एसी हीं शिक्षा-पद्धति भारत में आज प्रतिष्ठित है। न्यायदान पश्चिमी ढंग से हीं हो रहा है। इसकी तालीम भी जैसी अंग्रेज़ों के दिनों में थी वैसी हीं आज है। अध्यापक, वकील, डॉक्टर, इंजीनियर और राजनीतिक नेता – ये पांच मिलकर भारत के सार्वजनिक जीवन को पश्चिमी ढंग से चला रहें हैं। अगर पश्चिम के विज्ञान और यांत्रिक कौशल्य (Technology) का सहारा हम न लें और गांधीजी के हीं सांस्कृतिक आदर्श का स्वीकार करें, तो भारत जैसा महान देश साउदी अरेबिया जैसे नगण्य देश की कोटि तक पहुंच जाएगा, यह डर भारत के आज के सभी पक्ष के नेताओं को है।

भारत शांततावादी है, युद्ध-विरोधी है। दुनिया का साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, शोषणवाद, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच फैला हुआ उच्च-नीच भाव – इन सब का विरोध करने का कंकण भारत-सरकार ने अपने हाथ में बांधा है। तो भी जिस तरह के आदर्श का गांधीजी ने अपनी किताब *हिंद स्वराज्य* में पुरस्कार किया है, उसका तो उसने अस्वीकार हीं किया है। स्वाभाविक है कि इस तरह के नये भारत में अंग्रेज़ी भाषा का हीं बोलबाला रहें। सिर्फ अमेरिका हीं नहीं, किन्तु रशिया, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, जापान आदि विज्ञान-परायण

राष्ट्रों की मदद से भारत यंत्र-संस्कृति में जोरों से आगे बढ़ रहा है। और उसकी आंतरिक निष्ठा मानती है कि यही सच्चा मार्ग है। पू॰ गांधीजी के विचार जैसे हैं वैसे नहीं चल सक़ते।

यह नई निष्ठा केवल नेहरूजी की नहीं, किन्तु करीब करीब सारे राष्ट्र की है। श्री विनोबा भावे गांधीजी के आत्मवाद का, सर्वोदय का और अहिंसक शोषण-विहीन समाज-रचना का जोरों से पुरस्कार कर रहें हैं। ग्रामराज्य की स्थापना से, शांतिसेना के द्वारा, नई तालीम के जरिये, स्त्री-जाति की जागृति के द्वारा वे मानस-परिवर्तन, जीवन-परिवर्तन और समाज-परिवर्तन का पुरस्कार कर रहें हैं। भूदान और ग्रामदान के द्वारा सामाजिक जीवन में आमूलाग्र क्रांति करने की कोशिश कर रहें हैं। लेकिन उन्होंने भी देख लिया है कि पश्चिम के विज्ञान और यंत्र-कौशल्य के बिना सर्वोदय अधूरा हीं रहेगा।

जब अमेरिका का प्रजासत्तावाद, रशिया और चीन का साम्यवाद, दूसरे और देशों का और भारत का समाजसत्तावाद और गांधीजी का सर्वोदय दुनिया के सामने स्वयंवर के लिए खड़े हैं, एसे अवसर पर गांधीजी की इस युगांतरकारी छोटी सी किताब का अध्ययन जोरों से होना चाहिए। गांधीजी स्वयं भी नहीं चाहते थे कि शब्द-प्रमाण की दुहाई देकर हम उनकी बातें जेसी की वैसी ग्रहण करें।

हिंद स्वराज्य की प्रस्तावना में गांधीजी ने स्वयं लिखा है कि व्यक्तिश: उनका सारा प्रयत्न *हिंद स्वराज्य* में बताये हुए आध्यात्मिक स्वराज्य की स्थापना करने के लिए हीं है। लेकिन उन्होंने भारत में अनेक साथियों की मदद से स्वराज्य का जो आन्दोलन चलाया, कांग्रेस के जैसी राजनीतिक राष्ट्रीय संस्था का मार्गदर्शन किया, वह उनकी प्रवृत्ति पार्लियामेन्टरी स्वराज्य के लिए हीं थी।

स्वराज्य के लिए अन्याय का, शोषण का और परदेशी सरकार का विरोध करने में अहिंसा का सहारा लिया जाय, इतना एक हीं आग्रह उन्होंने रखा है। इसलिए भारत की स्वराज्य-प्रवृत्ति का अर्थ उनकी इस वामनमूर्ति पुस्तक *हिंद स्वराज्य* से न किया जाय।

गांधीजी की यह चेतावनी कांग्रेस के स्वराज्य-आन्दोलन का विपर्यास करने वालों के लिए थी। आज जो लोग भारत का स्वराज्य चला रहें हैं, उनके बचाव में भी यह सूचना काम आ सकतीं है। भारत के राष्ट्रीय विकास का दिन-रात चिंतन करने वाले चिंतक और

नेता भी कह सक़ते हैं कि हमारे सिर पर *हिंद स्वराज्य* के आदर्श का बोझा गांधीजी ने नहीं रखा था।

लेकिन अगर गांधीजी की बात सही है और भारत का और दुनिया का भला *हिंद स्वराज्य* में प्रतिबिम्बित सांस्कृतिक आदर्श से हीं होनेवाला है, तो इसके चिंतन का, नव-ग्रथन का और आचरण का भार किसी के सिर पर तो होना हीं चाहिए।

मैंने एक दफे गांधीजी से कहा था कि 'आपने अपनी स्वराज्यसेवा के प्रारम्भ में *हिंद स्वराज्य* नामक जो पुस्तक लिखी उसमें आपके मौलिक विचार हैं, तो भी शंका होती है कि वे रस्किन, थोरो, एडवर्ड कारपेन्टर, टेलर, मैक्स नार्डू आदि लोगों के चिंतन से प्रभावित हैं। इन लोगों ने आधुनिक सभ्यता के दोष दिखाये हैं। विश्व-बंधुत्व की बुनियाद पर स्थापित पुरानी सभ्यता का इन लोगों ने पुरस्कार किया, इसलिए आपका *हिंद स्वराज्य* पढ़ने से यही खयाल होता है कि आप भूतकाल को फिर से जाग्रत करने के पक्ष में हैं। आपको बार-बार कहना पड़ता है कि आप भूतकाल के उपासक नहीं हैं। मानव-जाति ने गलत रास्ते जितनी प्रगति की उतना रास्ता पीछे चलकर सच्चे रास्ते पर लगने के बाद आप फिर नीतिनिष्ठ, आत्मनिष्ठ रास्ते से नई हीं प्रगति करना चाहते हैं। तो:

"आपका जीवन-कार्य करीब करीब समाप्त होने आया है। भारत का स्वराज्य स्थापित होने की तैयारी है। एसे समय पर आप फिर से अपने जीवनभर के अनुभव और चिंतन की बुनियाद पर एसी एक नयी हीं किताब क्यों नहीं लिखते, जिसमें भविष्य की एक हजार साल की महामानव संस्कृति का बीज दुनिया को मिले?" वे अपने कार्य में इतने व्यस्त थे और बिगड़ता हुआ मामला सुधारने की प्राणपण से चेष्टा करने के लिए इतने चिंतित थे कि मेरी सूचना या प्रार्थना सुनने की भी उनकी तैयारी नहीं थी।

अब जब गांधीजी का दुनियावी जीवन पूरा हो चुका है और उनके लेखों का, भाषणों का, पत्रों का और मुलाकातों का अशेष संग्रह तैयार हो रहा है, तब आदर्श-संस्कृति के बारे में और उसे स्थापित करने के बारे में गांधीजी के विचार इकट्ठा कर के एसा एक प्रभावशाली चित्र किसी अधिकारी व्यक्ति को तैयार करना चाहिए, जिसे हम *हिंद स्वराज्य* की परिणत

आवृत्ति नहीं कहेंगे; उसे तो स्वराज्य-भोगी भारत का विश्वकार्य या एसा हीं कुछ कहना होगा।

जो हो, एसी एक किताब की बहुत हीं जरूरत है।

इसके मानी यह नहीं कि वह किताब इस *हिंद स्वराज्य* का स्थान ले सकेगी। इस अमर किताब का स्थान तो भारतीय जीवन में हमेशा के लिए रहेगा हीं।

१ अगस्त, १९५९ **काका कालेलकर**

[मूल हिंदी]

[पहला हिंदी संस्करण, नवजीवन, अहमदाबाद, १९५९]

आज से करीब १०६ साल पहले, सन १९०९ में, दक्षिण अफ्रिका के ट्रान्सवाल प्रान्त में बसनेवाले हिन्दुस्तानी लोगों की समस्याओं के बारे में अंग्रेज सरकार के साथ मशवरा करने के लिए दो सदस्यों का प्रतिनिधिमंडल लन्दन गया था। उन दो सदस्यों में से एक गांधीजी थे। लन्दन में चार महिनों तक रुकने के बाद *किलडोनन कॅसल* नामक जल-जहाज़ में वे वापस लौटते थे। दस दिन के उस सफर के दरमियान गांधीजी की कलम से जो झरा वह उनके जीवन की प्रस्तावना बराबर था। शायद ही ३७ साल की उम्र के गांधीजी अभी हिन्दुस्तान के किनारे छः साल बाद उतरने वाले थे। इसके पहले उन्होंने अपने आगे के जीवन का और स्वतंत्र हिन्दुस्तान के राष्ट्रजीवन का मानो पथ-नकशा उस छोटी सी पुस्तक में रेखांकित किया। दक्षिण अफ्रिका पहुँचने के बाद रस्किन की पुस्तक *अन्टु धिस लास्ट* गांधीजी के जीवन में मार्ग-परिवर्तक बनी थी; तो, मानो उसी पुस्तक के विकसित स्वरूप में *हिन्द स्वराज* पुस्तक आई।

यह ग्रंथ अनेक कारणों से विशिष्ट है। गांधीजी की कलम से, गांधीजी के हस्ताक्षरों में, मातृभाषा गुजराती में, लिखा गया हो और उनके हस्ताक्षरों में ही छपा हो, ऐसा यह एक मात्र ग्रंथ है। इसके अलावा सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि गांधी विचारधारा को समझने के लिए यह ग्रंथ चाबी-रूप है और आज सौ वर्ष बाद भी यह विद्यमान है।